वर्ष – 87 । अंक – 11 । प्रति – ₹ 25 । ₹ –300 वार्षिक

बुद्धिमानो! मूर्ख क्यों बनते हो ?

"मनुष्य की बुद्धिमत्ता प्रसिद्ध है। उसकी चतुरता, क्रियाकुशलता और सोचने की अद्‌भुत शक्ति की जितनी प्रशंसा की जाए, उतनी ही कम है । सृष्टि का मुकुटमणि होने का गौरव उसने अपनी बुद्धिमत्ता के बल पर प्राप्त किया है और विविध दिशाओं में अनेकानेक आविष्कार करके अपने को साधनसंपन्न बनाया है। इतना होते हुए भी हम देखते हैं कि मनुष्य में मूर्खता की मात्रा कम नहीं है।

हम नित्य असंख्यों को मरते हुए देखते हैं, पर अपने आप को अमर जैसा अनुभव करके काम और लोभ के फंदे में फँसे रहते हैं। पाप के दुष्परिणामों से असंख्यों प्राणी दु:ख से बिलबिलाते हुए देखे जाते हैं , उन्हें देखते हुए भी हम पाप करते हैं और सोचते हैं कि पाप के फल से मिलने वाले दु:ख से बचे रहेंगे। क्षणिक सुखों के बदले चिरकालीन सुख–शांति को ठुकराते रहने वालों की संख्या कम नहीं है। इन क्रियाकलापों को किस प्रकार बुद्धिमानी कहा जाएगा।

सांसारिक मनोरंजन की बातों में बुद्धिमानी दिखाना और आत्मस्वार्थ को भूले रहना यह कहाँ की समझदारी है। पाठको! मूर्ख मत बनो। मनुष्योचित बुद्धिमत्ता को अपनाओ, खिलौने रँगने के लिए अपना रक्त मत बहाओ, सच्चे स्वार्थ को ढूँढ़ो और परमार्थ की ओर कदम बढ़ाओ।"

श्रीराम शर्मा आचार्य

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	87
अंक	:	11
नवंबर	:	2023
कार्तिक-मार्गशीर्ष	:	2080
प्रकाशन तिथि	:	01.10.2023

वार्षिक चंदा

भारत में	:	300/-
विदेश में	:	2800/-
आजीवन (बीसवर्षीय)		
भारत में	:	6000/-

उपासना

सर्वव्यापी ईश्वरीय चेतना की उपासना मानवीय जीवन की एक ऐसी अनिवार्यता है, जिसका अनुपालन न करने पर अंतरंग का कलुषित होना, आत्मसत्ता पर कषाय-कल्मषों के आवरण का छा जाना सुनिश्चित हो जाता है। उपासना का शाब्दिक अर्थ—ईश्वरीय चेतना के सामीप्य को प्राप्त करने से लगाया जाता है। ईश्वर के पास बैठने का अर्थ अपनी पात्रता बढ़ाने, दैवी गुणों को धारण करने से लगाया जा सकता है। यही कारण है कि परमपूज्य गुरुदेव ने उपासना को आत्मा का प्रतिदिन का भोजन कहकर के पुकारा है।

उपासना में अपनी श्रद्धा को आदर्शों के समुच्चय, श्रेष्ठताओं, सद्गुणों के समुच्चय पर आरोपित करने का क्रम चलता है। जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, उसका व्यक्तित्व भी कुछ वैसा ही विनिर्मित हो जाता है। इसीलिए भगवान गीता में कहते हैं कि '**श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।**' उपासना के क्रम में परमात्मसत्ता से एकाकार होने के इसी भाव को जाग्रत एवं जीवंत बनाया जाता है। जिस दिन ऐसा संभव हो जाए—उसी दिन हमारे जीवन में परमात्मा का, महानता का, श्रेष्ठता का प्रवेश हो जाता है और व्यक्तित्व आमूलचूल बदलता चला जाता है। भगवान शंकराचार्य ने कहा कि '**जीवो ब्रह्मैव नापरः**' अर्थात जीव ही ब्रह्म है। नर की नारायण में, पुरुष की पुरुषोत्तम में और क्षुद्र की महान में परिणति ही जीवात्मा की नियति है। उसी संभावना को साकार करने का पथ उपासना का पथ है। ❑

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विषय सूची

आवरण पृष्ठ परिचय

गुरुसत्ता के देदीप्यमान प्रतीक सजल श्रद्धा-प्रखर प्रज्ञा

नवंबर-दिसंबर, 2023 के पर्व-त्योहार

वार	तिथि	पर्व
बुधवार	01 नवंबर	करवा चौथ
रविवार	05 नवंबर	अहोई अष्टमी
गुरुवार	09 नवंबर	रमा एकादशी
शुक्रवार	10 नवंबर	धनतेरस
रविवार	12 नवंबर	रूप चतुर्दशी/ दीपावली
सोमवार	13 नवंबर	सोमवती अमावस्या
मंगलवार	14 नवंबर	बेसतुबरस/अन्नकूट/ बालदिवस
बुधवार	15 नवंबर	भाईदूज/यमद्वितीया
रविवार	19 नवंबर	सूर्य षष्ठी
मंगलवार	21 नवंबर	अक्षय नवमी
गुरुवार	23 नवंबर	देव प्रबोधिनी एकादशी/देवठान
सोमवार	27 नवंबर	गुरुनानक जयंती /पूर्णिमा / देव दीपावली
शुक्रवार	08 दिसंबर	उत्पत्ति एकादशी
सोमवार	18 दिसंबर	सूर्य षष्ठी
शुक्रवार	22 दिसंबर	मोक्षदा एकादशी 'स्मा.'
शनिवार	23 दिसंबर	गीता जयंती/मोक्षदा एकादशी 'वै.'
सोमवार	25 दिसंबर	क्रिसमस
मंगलवार	26 दिसंबर	दत्तात्रेय जयंती

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

सामगान की देन है संगीत

भारतीय संस्कृति वेदों को अपौरुषेय मानती है, वैदिक परंपरा को ही भारतीय संस्कृति का आधार माना जाता है। वेद शुद्ध ज्ञान का स्वरूप हैं और आर्षमान्यता के अनुसार चेतना की उच्चतम अवस्था में आत्मसत्ता की प्रयोगशाला में बैठकर अनुभव किया गया ज्ञान वैदिक ज्ञान है—यही वेदों का समवेत संदेश है।

वेद चार माने गए हैं, जिनमें सामवेद मूल रूप से वैदिक संगीत एवं दैवी गानों के लिए जाना जाता है। सामवेद ही भारतीय संगीत का मूल आधार भी है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने सामवेद के प्रति अपने इस प्रेम को इन्हीं शब्दों में अभिव्यक्त किया है कि **'वेदानां सामवेदोऽस्मि।'** अर्थात वेदों में मैं सामवेद हूँ या यों कहें कि प्रभु संगीत को और विशेष रूप से वैदिक संगीत को अपना कलात्मक ऐश्वर्य मानते हैं।

वेद-ज्ञाताओं के अनुसार, वेदों की उत्पत्ति गायत्री से हुई और ओंकार का शब्द वेदों का मूल प्रतीक बना। इसीलिए चिंतक एवं विचारक ओऽम् (ॐ) को वर्णमाला में स्थान न देते हुए इसे सबसे अलग, सबसे ऊपर एवं सबसे श्रेष्ठ मानते हैं तथा सृष्टि का प्रतीक बतलाते हैं। ॐ से निकला नाद स्वर की उत्पत्ति का हेतु बना और वही स्वर भारतीय संगीत का आधार है।

इसीलिए भारतीय संगीत को देवज्ञान की संज्ञा दी जाती रही है; क्योंकि इसमें उत्पन्न एवं रचित स्मृतियाँ ॐ को, सृष्टि को, परमेश्वर को आधार बनाकर ही लिखी गई हैं। इसीलिए सामवेद को भारतीय संगीत कला का प्राचीनतम दर्शन माना गया है।

वैदिक मान्यता के अनुसार, प्रजापति ब्रह्मा ने संगीत का निर्माण सामवेद से ही किया। इसीलिए सामगान में वैदिक मंत्रों का बाहुल्य है; क्योंकि जो मंत्र गाए जाते हैं, वे ही साम कहलाते हैं। इनका उद्देश्य भावना की प्रगाढ़ता द्वारा रचे गए गीतों को सुमधुर रूप में परमपिता परमेश्वर की आराधना करना था और इसी कारण से सामगान का ईश्वरीय आराधना का प्रभावशाली माध्यम मात्र गद्य है। ऋषि कहते हैं—

'स्वरः सामशब्देन लोकोऽभिधीयते'

अर्थात साम का प्रयोगात्मक अर्थ स्वर है और स्वरलहरियों के आधार पर ही सामगानों की रचना की गई है।

ऐसा नहीं है कि सामगान मात्र सामवेद में ही उपलब्ध हैं, अपितु ऋग्वेद में आए अनेक सूक्त, स्तुतियाँ तथा ऋचाएँ भी इसी वैदिक संगीत के नियमों पर आश्रित हैं; क्योंकि उन स्तुतियों का मूल उद्देश्य भी प्रभु को अपनी श्रद्धा का अर्पण करना ही था। साम शब्द का सामान्य अर्थ गीत ही माना जाता है और ऐसा नहीं है कि यह शब्द मात्र वैदिक परंपरा में अपना स्थान रखता है।

ईसाई धर्मग्रंथ बाइबिल में आई ईश्वर-स्तुतियाँ भी साम (Psalm) कहलाती हैं, जो समानता कहीं-न-कहीं एक ही आधार की ओर इशारा करती है। संगीत मूलरूप से स्वर और लय, दो तत्त्वों पर आधारित होता है। वेदों में लय को 'छंद' से संबोधित किया जाता है और विभिन्न वैदिक मंत्रों के उच्चारण के साथ गायत्री छंद, अनुष्टुप छंद इत्यादि छंदों को प्रयुक्त किया जाता

रहा है। साम के मूलरूप से दो भाग किए गए हैं—पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक।

दोनों ही तरह के आर्चिक ग्रंथों में ऋचाएँ संगृहीत हैं। पूर्वार्चिक की ऋचाओं पर जो सामगान आधारित हैं उन्हें गेयगान या प्रकृतिगान तथा उत्तरार्चिक पर आधारित सामगान उहगान कहलाते हैं। आर्चिक ग्रंथों में तीन तरह के स्वर मूल रूप से प्रयुक्त होते रहे हैं; जिन्हें उदात्त, अनुदात्त और स्वरित कहते हैं, परंतु समय के साथ-साथ प्रचय और सन्नतर नामक स्वर भी इस शृंखला में समाविष्ट हो गए। एक स्वर के साथ युक्त सामगान आर्चिक, दो स्वरों वाले सामगान को गाथिक तथा तीन स्वरों वाले सामगान को सामिक कहने का प्रचलन रहा है।

बिना विषय की गूढ़ता में प्रवेश करे, यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान संगीत का स्वरूप वैदिक परंपरा से प्रारंभ हुआ और यज्ञ-अनुष्ठानों के समय आश्रम में लिए जाने वाले स्वर क्रमशः वर्तमान शैली में विकसित होते चले गए। जिन सप्तकों को वर्तमान भारतीय संगीत का आधार माना जाता है, सामगान भी ऐसे ही स्वरसप्तकों से बद्ध था, मात्र उनके नाम भिन्न थे। इन्हें क्रमशः क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मंद्र, अतिस्वार कहा जाता था और आज भी संगीत गायन में इसी शैली के आधार पर अभ्यास किया जाता है।

नारदीय शिक्षा में उद्धरण मिलता है कि-

यस्सामगानां प्रथमस्त ववेणोमर्ध्यमः स्वरः।
यो द्वितीयस्य गान्धारः तृतीयस्त्वृषभः स्मृतः।
चतुर्थष्षड्ज इत्याहुः पंचमो धैवतो भवेत।
षष्ठो निषादो विज्ञेयः सप्तमः पंचमः स्मृतः॥

अर्थात स्वरों में प्रथम स्वर मध्यम स्वर (वंशी का), द्वितीय स्वर वेणु का गंधार, तृतीय स्वर वेणु का ऋषभ, चतुर्थ स्वर वेणु का षड्ज, पंचम स्वर वेणु का धैवत, षष्ठ स्वर वेणु का निषाद एवं सप्तम स्वर वेणु का पंचम है।

इस दृष्टि से देखें तो सामगान का क्रम म ग रे सा ध नि प होना चाहिए। यही क्रम धीरे-धीरे विकसित होते हुए वर्तमान स्वरसप्तक में परिवर्तित हुआ प्रतीत होता है।

प्रचलित मान्यताओं, विशेषज्ञों के मत एवं विखरे हुए प्रमाणों का समुचित दृष्टि से अध्ययन करने पर यही प्रतीत होता है कि वर्तमान भारतीय शास्त्रीय संगीत वैदिक साम गायन अथवा सामगान की ही देन है।

इसीलिए बहुत लंबे समय तक शास्त्रीय संगीत को संगीतज्ञ वैदिक कर्मकांडों की तरह वंदनीय-पूजनीय मानते रहे; क्योंकि इसका आधार वैदिक ज्ञान एवं दिव्य चिंतन ही था।

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥

—ईशावास्योपनिषद्-5

अर्थात वे (परमात्मा) चलते हैं, वे नहीं भी चलते; वे दूर हैं और समीप भी। वे प्रभु इस समस्त जगत् से परिपूर्ण भी हैं और इससे बाहर भी।

कालांतर में इसका स्वरूप विकृत हुआ और इसको कतिपय लोगों ने व्यवसाय का स्वरूप देने की चेष्टा की, जिससे न केवल संगीत की दिव्यता प्रभावित हुई, वरन इसमें निहित मूल्यों का भी ह्रास हुआ है।

प्राचीनकालीन मंत्र रागों में परिवर्तित हुए हैं और यदि उन्हीं मूल्यों को संरक्षित रखते हुए भारतीय संगीत प्रगति करता रहेगा तो यह सांस्कृतिक विरासत अक्षुण्ण रहेगी अन्यथा हम इस विराट संपदा को व्यर्थ ही गँवा बैठेंगे। ❑

प्रकाश की स्थापना का महापर्व

हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी दीपावली का महापर्व हम सभी मनाएँगे। इसके प्रचलित लौकिक महत्त्व और इस दिन संपन्न किए जाने वाले धार्मिक, सांस्कृतिक व अन्य पारंपरिक कर्मकांडों से तो न्यूनाधिक रूप में सभी परिचित हैं।

मकान-दुकान की साफ-सफाई, नए वस्त्राभूषण व सामानों की खरीदारी, साज-सजावट, रंग-बिरंगी लाइटें, मिष्टान्न का आदान-प्रदान, दीपों की प्रज्वलित कतारें, बच्चों की फुलझड़ी-पटाखे, सौहार्दपूर्ण मेल-मुलाकात आदि ये ऐसी बातें हैं, जो दीपावली पर्व से जुड़ी लोक संस्कृति और परंपराओं को प्रकट करती हैं, परंतु इस पर्व का वास्तविक स्वरूप, संदेश और प्रेरणाएँ इससे कहीं ज्यादा व्यापक हैं।

सनातन धर्म, बौद्ध, जैन, सिख व अनेक विदेशी संस्कृतियों में इस पर्व का संदर्भ अलग-अलग है। अनेक ऐतिहासिक घटनाक्रम भी दीपावली पर्व से जुड़े हैं। यूरोप, अफ्रीका से लेकर एशियाई देशों में जैसे—सुमात्रा एवं जावा, मॉरीशस, श्रीलंका, चीन, जापान, थाईलैंड, म्यांमार, नेपाल आदि में भी किसी-न-किसी रूप में इस पर्व को मनाए जाने का प्रचलन है, लेकिन अन्य देशों की तुलना में हमारे भारतीय समाज व संस्कृति में दीपावली पर्व का कुछ खास ही महत्त्व है।

भारतवर्ष में दीपावली घर-परिवार, समाज और राष्ट्र की सुख-समृद्धि, ऐश्वर्य और आनंद का पर्याय-प्रतीक रहा है। इस पर्व का सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्त्व प्राचीनकाल से ही भारतीय संस्कृति के लोकजीवन में विद्यमान है।

यह भारतीय जनमानस में उल्लास, प्रेम, आनंद, पवित्रता, सौहार्द, प्रेरणा और प्रकाश से युक्त जीवनरस की महिमा का महापर्व है। पाँच दिनों के पाँच पर्वों व विशिष्ट तिथियों से मिलकर बनता है।

धनतेरस, नरक चतुर्दशी, अमावस्या लक्ष्मीपूजन, प्रतिपदा अन्नकूट-गोवर्धन पूजा व भाईदूज इन पाँच पर्वों की शृंखला से दीपावली का महापर्व सर्वाधिक खास हो जाता है। वैसे सामान्य धारणाओं में तो यह लक्ष्मी-पूजा का एक विशेष पर्व समझा जाता है, लेकिन इसके साथ ही इस महापर्व में धन्वंतरि पूजन, नरक चतुर्दशी, कालीपूजा, हनुमान जयंती, महावीर निर्वाण, बलि प्रतिपदा, गोवर्धन पूजा, यम द्वितीया—भाईदूज, जैसी विशिष्ट पर्व-शृंखला समाहित है और भारतीय समाज में सभी की अपनी महत्ता है।

दीपावली पर्व की सार्थकता तभी है, जब इसके साथ जुड़ी प्रेरणाओं, संदेश और सौभाग्य को आत्मसात् किया जाए। इसमें समाहित प्रत्येक तिथियों का हमारे शास्त्रों में विशेष माहात्म्य है और उससे जुड़ी कल्याणकारी भावना भी।

जैसे दीपावली पर्व की शुरुआत त्रयोदशी तिथि को धनतेरस के साथ ही हो जाती है। इस तिथि को भगवान धन्वंतरि के अवतरण दिवस के रूप में मनाया जाता है। समुद्र मंथन से इसी दिन धन्वंतरि जी के एक हाथ में अमृत-कलश और

दूसरे में आयुर्वेद लेकर प्रकट होने का पौराणिक आख्यान है। इसमें हमारे आरोग्य की प्राप्ति और स्वास्थ्य चेतना को जाग्रत करने की मूल प्रेरणा भी समाहित है।

इस महापर्व का दूसरा दिन नरक चतुर्दशी है जिसमें भगवान श्रीकृष्ण द्वारा इसी दिन नरकासुर के वध का आख्यान जुड़ा है। यह अर्घ्यदान द्वारा पितरों की मुक्ति की कामना से भी संबद्ध है। हनुमान जयंती का उत्सव भी इसी तिथि में सम्मिलित है।

हमारी शास्त्रीय व्याख्याओं में 'नरक' शब्द का सीधा संबंध मृत्यु के देवता यमराज से है। किसी की अकाल मृत्यु न हो, इस निमित्त यम देवता से प्रार्थना के साथ दीप प्रज्वलित करने की परंपरा निर्वाह की जाती है। मान्यता यह है कि यम मृत्यु के देवता हैं, अत: उन्हीं के द्वारा समस्त संसार के कर्मों का नियमन होता है और वे ही संयम के अधिष्ठाता देवता भी हैं।

जीवन की संपूर्णता और अनुशासन की भावना इस पर्व में समाहित है। शास्त्रों में उल्लेख है कि प्रात: स्नान-दान एवं सायं दीपदान करने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। महापर्व का तीसरा दिन अमावस्या का है। यही दीपावली उत्सव का प्रमुख दिन है। भगवान गणेश की आराधना और सुख, समृद्धि, ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी का पूजन इसी दिन किया जाता है।

सामान्य रूप से तो लक्ष्मी-गणेश के सम्मिलित पूजन और दीपदान को ही इस दिन मुख्य कृत्य माना जाता है, परंतु योग, तंत्र और अध्यात्म की साधना के लिए भी इस अमावस की रात्रि का अत्यंत महत्त्व रहा है। साधकों की दृष्टि में यह महालक्ष्मी तत्त्व जिसे श्रीतत्त्व भी कहा जाता है, के रहस्य को जानने तथा उसकी गूढ़तम विभूतियों की उपलब्धि प्राप्त करने का पर्व है। श्रीविद्या और श्रीयंत्र के साधक जिस तत्त्व की उपासना करते हैं, वह 'श्रीतत्त्व' का दीपावली पर्व महामहोत्सव है।

श्रीतत्त्व से लौकिक और अलौकिक—दोनों जीवन पक्ष समान रूप से संबद्ध हैं। 'श्री' को परमेश्वर की परम ऐश्वर्य शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। श्री से संयुक्त होने से ही परमात्मा का सत्यं-शिवं-सुन्दरम् स्वरूप अभिव्यक्त हो पाता है। संसार के परम कल्याण और आनंद के लिए यह श्रीतत्त्व ही लक्ष्मी के अष्टरूपों में अभिव्यक्त हो पाता है।

लक्ष्मी के आठ स्वरूप हैं—आद्यलक्ष्मी, विद्यालक्ष्मी, सौभाग्यलक्ष्मी, अमृतलक्ष्मी, कामलक्ष्मी, सत्यलक्ष्मी, भोगलक्ष्मी और योगलक्ष्मी। इन्हीं को आधार बनाकर लोक-परंपराओं में राजा के ऐश्वर्य को राजलक्ष्मी, गृह स्वामिनी को गृहलक्ष्मी, युद्ध विजय को विजयलक्ष्मी, व्यापार लाभ को वाणिज्य लक्ष्मी आदि कहे जाने का प्रचलन हुआ है। दीपावली पर्व पर लक्ष्मी पूजन की सार्थकता को हमारे ऋषियों ने आत्मतत्त्व में प्रतिष्ठित विभूतियों के जागरण के संदर्भ में देखा है।

महालक्ष्मी का आंतरिक वैभव सभी के भीतर आत्मविभूति के रूप में विद्यमान है, परंतु इस विभूति से केवल वही लाभान्वित हो पाता है, जो आत्मज्योति को स्वयं में प्रकाशित करने में सफल होता है। दीपावली इसी आत्मज्योति को उदीप्त करने का दुर्लभ संयोग एवं अवसर है जो हर वर्ष प्रत्येक के जीवन में आता है, लेकिन दुर्भाग्यवश अज्ञान के कारण लोग बाह्य विभूतियों में ही उलझे रह जाते हैं और आत्मविभूति की ओर देख ही नहीं पाते। दीपावली की दीपज्योति में इसी अंत:प्रकाश की प्रेरणा को जाग्रत करने का संदेश है।

दीपावली का दीपोत्सव सिर्फ एक सांस्कृतिक परंपरा का निर्वाह मात्र नहीं, अपितु अमावस के

घनघोर अंधकार की भाँति जीवन में अज्ञानरूपी अंधकार पर विजय प्राप्त कर शाश्वत आनंद और प्रकाश की स्थापना का महापर्व है।

इससे जुड़े पौराणिक आख्यानों में भी यही मर्म समाहित है। राम की विजय, सावित्री का मृत्यु पर वरदान प्राप्त करना, यम देवता का नचिकेता को दिया गया दिव्य ज्ञान, भगवान महावीर का निर्वाण आदि अनेक दृष्टांत दीपोत्सव के यथार्थ मर्म और मूल प्रेरणाओं को प्रकट करते हैं।

इस महापर्व का चतुर्थ सोपान अमावस्या के पश्चात आने वाली तिथि प्रतिपदा पर्व का है। इस दिन नए अन्न का पूजन और उससे निर्मित पकवान द्वारा ईश्वर से सुख, समृद्धि और दीर्घायुष्य की प्रार्थना की जाती है। इसे नवान्न-पूजा पर्व अथवा अन्नकूट-पूजा पर्व भी कहा जाता है।

हम सभी के जीवन का आधार प्राण तत्त्व है। अन्न से प्राण तत्त्व प्रकट होता है और व्यक्ति आरोग्य, सामर्थ्य, जीवनीशक्ति तथा दीर्घायु को प्राप्त करता है। शास्त्रों में अन्न को ब्रह्म की संज्ञा प्रदान की गई है। इसी पोषक शक्ति रूप ईश्वर की आराधना, आभार और उसके प्रति प्रसन्नता की अभिव्यक्ति का मर्म प्रतिपदा पर्व में सन्निहित है।

दीपावली महापर्व से संयुक्त अगला सोपान है—गोवर्धन पूजा। हमारी संस्कृति में गाय को सुख, समृद्धि और वैभव का पर्याय तथा गंगा की भाँति पवित्र माना गया है। इसमें समाहित कल्याणकारी विशेषताओं के कारण यह साक्षात् लक्ष्मी का पर्याय है।

माँ लक्ष्मी की भाँति गाय भी जीवन को पोषण और समृद्धि प्रदान करती है, इसलिए इस दिन गायों की पूजा और उनके प्रति कृतज्ञता अभिव्यक्त करने का विधान बनाया गया है। गोवर्धन पूजा का दूसरा तात्पर्य प्रकृति की उपासना और आराधना से भी जुड़ा है। इसमें दैवी आपदाओं और असंतुलन से मुक्ति के लिए प्रकृति की शरण में जाने का मर्म समाहित है।

गोवर्धन पर्व के पश्चात भाईदूज का पर्व आता है; जिसमें बहनें, भाइयों को तिलक कर यम देवता से उनकी लंबी उम्र की प्रार्थना करती हैं। इसे यम द्वितीया भी कहते हैं। इस दिन यमुना ने यम को निमंत्रित कर उनका सत्कार किया था तथा सभी भाइयों के सुख और दीर्घायु का वरदान प्राप्त किया था। यम की प्रसन्नता के लिए इस पर्व को मनाने की परंपरा है। यह पर्व हमारी संस्कृति में भाई-बहन के अटूट प्रेम-स्नेह का प्रतीक है।

इस तरह पाँच दिनों की अवधि में अनेक विशिष्ट तिथियों-संयोगों को स्वयं में सम्मिलित करने वाला दीपावली का महापर्व हम सभी के जीवन में अत्यंत महत्त्व रखता है। प्रकृति में ऋतु-परिवर्तन और अंतश्चेतना में प्राणों के आनंद में रूपांतरित होने का अनुपम अवसर है। इसमें समाहित प्रेरणाओं के मनोविज्ञान को समझ लिया जाए तो यह ऋद्धि-सिद्धि, श्री और समृद्धि का वरदान देने वाला पर्व है।

आध्यात्मिक दृष्टि से भी यह पर्व बंधन-मुक्ति का अलभ्य सुअवसर है। दीपक को आत्मज्योति का प्रतीक मानकर भीतर के अज्ञानरूपी अंधकार पर विजय प्राप्त करने का यह एक अत्यंत ही दुर्लभ ब्रह्मांडीय क्षण है। शक्तिसाधक इस क्षण का लाभ उठाने के लिए लंबी तैयारी और प्रतीक्षारत रहते हैं, ताकि वे जन्म-जन्मांतरों के बंधन को इसी एक शुभ मुहूर्त में हटाकर आत्मज्योति को प्राप्त कर सकें।

शास्त्रों में दीपावली की रात्रि को यों ही महारात्रि नहीं कहा जाता, वरन उसके पीछे एक गहन अध्यात्म

दर्शन निहित है। हम सभी के लिए भी दीपावली की सार्थकता का मर्म यही है कि हम अपनी आत्मज्योति को प्रकाशित करने वाली प्रेरणाओं और संकल्पों को इस महापर्व की मूलचेतना से जोड़ सकें।

दीपकों के प्रकाश की ज्योति—आभा हमारे जीवन में सत्प्रवृत्तियाँ, सद्ज्ञान, संवेदना, प्रेम, करुणा, त्याग, सुख-शांति, समृद्धि, श्री और सिद्धि, शुभ और लाभ के पर्याय के रूप में अभिव्यक्त हो सके इसी पवित्र कामना के साथ इस महापर्व को सार्थक बनाने में हम सभी अग्रसर हों।

युगऋषि की चेतना का दिव्य संरक्षण और प्रखर ज्ञान का आलोक ज्योति पर्व पर सभी की अंतश्चेतना में अंकुरित हो उठे, ऐसी प्रार्थना और कामना सभी के लिए निवेदित है। ❑

शाब्दिक रूप से धर्म शब्द की व्युत्पत्ति 'धृ' धातु से होने के कारण, धर्म शब्द का अर्थ होता है—धारण करना। जो तत्त्व सारे संसार को धारण करता है अथवा उसके द्वारा धारण करने योग्य होता है, उसे धर्म कहते हैं।

अँगरेजी भाषा की दृष्टि से धर्म 'रिलीजन', व्यक्ति तथा समाज को बाँधने वाला माध्यम है और यही माध्यम उपासक एवं उपास्य, भक्त एवं भगवान तथा आराधक एवं आराध्य के बीच सेतु बन जाता है। सभी चिंतक-विचारक, संत-दार्शनिक, तपस्वी-सुधारक, इसी कारण मानवता के मूलभूत सिद्धांतों को धारण करने वाले तत्त्व को धर्म कहकर पुकारते हैं।

निकट की वार्त्ताओं के क्रम में परमपूज्य गुरुदेव इसीलिए कहा करते थे कि "सच्चा धार्मिक एक अव्यक्त भाषा बोलता है, जिसे संसार का हर व्यक्ति समझ सकता है। यह वाणी उसके अंतःकरण से भाव-संवेदनाओं के रूप में प्रस्फुटित होती है। विश्व उसका परिवार और संसार का प्रत्येक मनुष्य उसका अपना संबंधी होता है। सबका कल्याण करना ही उसकी पूजा बन जाता है।

इसीलिए महात्मा गांधी हों या विनोबा, मार्टिन लूथर किंग हों अथवा कागाबा, संत फ्रांसिस हों या हजरत मुहम्मद, भगवान बुद्ध हों या आचार्य शंकर—ये सभी अपने अंतःकरण में व्याप्त करुणा तथा मानवता के मूलभूत सिद्धांतों को जीने के कारण सच्चे अर्थों में धार्मिक कहे जा सकते हैं।" आज धर्म को लेकर कितनी भी बातें क्यों न होती हों, वस्तुतः धर्म का यही सच्चा स्वरूप है।

कर्म बड़ा या भाग्य

'कर्म बड़ा या भाग्य'—यह बहस इस दुनिया में सदियों से चली आ रही है। कर्म और भाग्य में बड़ा कौन है ? यह प्रश्न सदियों से मानव मन में उभरता रहा है। कर्म को मानने वाले कर्मवादी लोग कहते हैं कि कर्म ही सब कुछ है और भाग्य कुछ नहीं होता। वहीं भाग्यवादी लोगों का कहना है कि भाग्य ही सब कुछ है और मनुष्य चाहे जो कुछ कर ले; अंततः होगा वही, जो भाग्य में, किस्मत में लिखा होगा।

वस्तुतः सत्य क्या है ? कर्म बड़ा है या भाग्य ? कर्म श्रेष्ठ है या भाग्य? कर्म महत्त्वपूर्ण है या भाग्य ? कर्म और भाग्य एकदूसरे के विरोधी हैं या पूरक ? ये प्रश्न हमारे मन में अक्सर उठते हैं, पर वास्तव में सच क्या है ? इसे समझने के लिए हम पुराणों में वर्णित एक मधुर कहानी में प्रवेश करते हैं।

कहानी के अनुसार एक बार देवर्षि नारद भगवान विष्णु के पास पहुँचे। उन्होंने भगवान से शिकायत करते हुए कहा—"आपकी बनाई इस धरती पर आपका प्रभाव कम हो रहा है। जो लोग धर्म और सच्चाई के रास्ते पर चल रहे हैं, उनका भला नहीं हो रहा है तथा अधर्म और बुराई के मार्ग पर चलने वाले दुष्ट, अधर्मी, पापी लोग हर दिन प्रगति कर रहे हैं।"

देवर्षि ने आगे कहा—"अच्छाई के मार्ग पर चलने वाले लोग, अच्छे कर्म, शुभ कर्म, पुण्य कर्म करने वाले लोग दुःख और कष्टों से भरा जीवन जी रहे हैं और बुराई के मार्ग पर चलने वाले लोग सुखी हैं।"

यह सुनकर विष्णु भगवान मुस्कराए और बोले—"जो हो रहा है, वह सब नियति है।" पर नारद जी बोले—"भगवन्! मैं पृथ्वी पर यह सारा दृश्य अपनी आँखों से देखकर आ रहा हूँ, फिर मैं कैसे मानूँ कि जो कुछ भी हो रहा है वह सब नियति है।"

भगवान बोले—"ठीक है, आप कोई ऐसी घटना बताएँ, जिससे आपकी बात सिद्ध होती हो।" देवर्षि नारद बोले—"अभी मैं एक वन से होकर आ रहा हूँ। उस वन में मैंने देखा कि एक गाय दलदल में फँस गई थी, लेकिन उसे बचाने वाला कोई भी न था। तभी एक चोर वहाँ से गुजरा और गाय को दलदल में फँसी देखकर उसके शरीर पर पैर रखकर वह दलदल पार कर निकल गया। फलस्वरूप वह चोर तो दलदल पार कर गया, पर वह गाय दलदल में और अधिक फँस गई।"

देवर्षि ने अपनी बात आगे बढ़ाई और कहा—"भगवन्! आगे जाकर उस चोर को बहुत से सोने के सिक्कों से भरा एक थैला मिल गया। इस घटना के कुछ समय बाद उसी मार्ग से एक वृद्ध महात्मा भी जा रहे थे। गाय को दलदल में फँसी देखकर उन्होंने अपनी जान जोखिम में डालकर उस गाय को दलदल से बाहर निकाला और उसकी जान बचाई।

"उसके बाद वे वृद्ध साधु अपने मार्ग पर आगे बढ़ते जा रहे थे कि तभी वह रास्ते में आए एक कुएँ में गिर पड़े। अब भगवन्, आप ही बताइए यह कौन-सा न्याय है ?" देवर्षि का प्रश्न सुनकर भगवान विष्णु बोले—"नारद! यह सब कर्मानुसार हुआ।" "वह कैसे भगवन् ?" नारद जी ने फिर पूछा।

तब भगवान बोले—"चोर के द्वारा पूर्व में किए गए अच्छे कर्मों के कारण उसके भाग्य में सोने के सिक्के भरा एक थैला नहीं, बल्कि पूरा महल था, पर उसने गाय के साथ जो किया उसके कारण उसके कर्म बिगड़ गए और कर्म बिगड़ जाने के कारण उसका भाग्य भी बिगड़ गया। फलस्वरूप भाग्य में, किस्मत में महल होने के बावजूद भी उसे सिर्फ एक थैला ही मिल सका।"

भगवान थोड़ा मुस्कराए व देवर्षि नारद को संबोधित कर कहने लगे—"वहीं साधु के भाग्य में उस दिन बड़ी दुर्घटना लिखी थी, लेकिन उन्होंने गाय को बचाकर जो पुण्यकर्म किया उससे उनके साथ घटने वाली बड़ी दुर्घटना एक छोटी-सी चोट में बदल गई।"

भगवान की बातें सुनकर नारद जी संतुष्ट हुए और उन्हें यह समझ में आया कि अच्छे कर्म से अच्छे भाग्य का निर्माण होता है और बुरे कर्म से बुरे भाग्य का निर्माण होता है और तदनुसार कर्म करने से हम अपने भाग्य को भी बदल सकते हैं। कर्म और भाग्य के रिश्ते को सम्यक रूप से समझने के लिए हम एक और मधुर व रोचक कहानी में प्रवेश करते हैं।

कहानी के अनुसार—"एक बहुत बड़ा जंगल था। जंगल के दोनों ओर अलग-अलग राजाओं का राज्य था और उसी जंगल में एक महात्मा रहते थे। उन महात्मा को दोनों राज्यों के राजा अपना गुरु मानते थे। उस जंगल के बीच से एक नदी बहती थी। अक्सर उसी नदी को लेकर दोनों राज्यों के बीच झगड़े-फसाद हुआ करते थे।

"एक बार दोनों राज्यों के बीच युद्ध जैसी स्थिति आ पहुँची। दोनों में से कोई भी राजा सुलह को तैयार न था, सो युद्ध होना सुनिश्चित था। दोनों राज्यों के राजा युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए महात्मा जी से आशीर्वाद पाने के उद्देश्य से उनकी कुटिया की ओर चल पड़े। पहले एक राज्य के राजा ने महात्मा जी के पास पहुँचकर महात्मा जी से विजय का आशीर्वाद माँगा।

"महात्मा जी ने कुछ देर उस राजा को निहारा और कहा—'राजन् तुम्हारे भाग्य में जीत तो नहीं दिखती, पर आगे ईश्वर की मरजी, देखो क्या होता है।' यह सुनकर राजा थोड़ा विचलित तो हुआ, पर राजा को अपने मनोबल, आत्मबल, संकल्पबल और पुरुषार्थ पर पूरा भरोसा था, इसलिए उसने सोचा कि यदि हारना ही है तो युद्ध से पहले ही हार मान लेना कोई वीरता नहीं, बल्कि कायरता ही है, इसलिए हम युद्ध में पीठ नहीं दिखाएँगे, बल्कि शत्रु को अपनी वीरता, बहादुरी और पौरुष का लोहा मनवाकर रहेंगे और आसानी से हार नहीं मानेंगे।

"मन-ही-मन यह सोचकर वह राजा वहाँ से चला गया। तत्पश्चात दूसरे राज्य का राजा भी महात्मा जी के पास जीत का आशीर्वाद लेने पहुँचा, उनके पैर छुए और विजयश्री का आशीर्वाद माँगा। महात्मा जी ने उसे भी कुछ देर निहारा और कहा—'राजन्, भाग्य तो तुम्हारे साथ है ही, इसलिए तुम जीत सकते हो।' यह सुनकर राजा तो खुशी से भर गया और वापस जाकर वह बिलकुल निश्चिंत हो गया, मानो उसने युद्ध उसी दिन जीत लिया हो।

"उधर पहले राज्य का राजा युद्ध की बढ़-चढ़कर पुरजोर तैयारियाँ करता रहा। अपनी कमजोरी और ताकत का सही मूल्यांकन कर वह अपनी कमजोरी दूर करने और अपनी ताकत को और अधिक बढ़ाने पर काम करता रहा और दूसरे राज्य का राजा अपने भाग्य के भरोसे रहने के कारण युद्ध की पुरजोर तैयारी नहीं कर सका। उसने अपनी कमजोरियों को दूर करने का कोई प्रयास भी नहीं

किया। अंततः युद्ध की घड़ी आ पहुँची। दोनों राज्यों के बीच युद्ध का शंखनाद हुआ।

"पहले राज्य के राजा की सेना यह सोचकर लड़ रही थी कि चाहे उसके भाग्य में, किस्मत में हार ही क्यों न लिखी हो, चाहे युद्ध का कोई भी परिणाम क्यों न हो, हार और जीत की चिंता किए बगैर वह सेना पूरी शक्ति से युद्ध लड़ रही थी।

"पहले राज्य के राजा की सेना यह बात सोचकर लड़ रही थी कि भले ही हमारी किस्मत में हार हो, पर फिर भी हम हार नहीं मानेंगे। हम अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयत्न करेंगे, हम अपना सर्वस्व झोंक देंगे।

"वहीं दूसरे राज्य की सेना यह सोचकर लड़ रही थी कि हमारे राजा के भाग्य में जीत लिखी ही है तो हमारी जीत तो सुनिश्चित है ही, फिर हमें कोई चिंता क्यों करनी चाहिए। लड़ते-लड़ते अचानक दूसरे राज्य के राजा के घोड़े के पैर का नाल भी निकल गया और घोड़ा लड़खड़ाने लगा, पर राजा ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। क्यों? क्योंकि राजा के दिमाग में बस, यही एक बात चल रही थी कि जीत मेरे भाग्य में है ही, फिर चिंता किस बात की।

"कुछ ही क्षण बाद दूसरे राजा का घोड़ा लड़खड़ाकर गिर गया, जिससे राजा भी जमीन पर गिर पड़ा और घायल हो गया और वह पहले राज्य की सेना के बीच घिर गया। सैनिकों ने उसे बंदी बना लिया और अपने राजा को सौंप दिया। राजा के बंदी होते ही उसके सारे सैनिकों ने आत्म-समर्पण कर दिया। युद्ध का निर्णय हो चुका था। पहले राज्य के राजा को विजयश्री प्राप्त हो चुकी थी।

"युद्ध का परिणाम महात्मा जी के द्वारा की गई भविष्यवाणी के बिलकुल विपरीत था। निर्णय के बाद महात्मा भी वहाँ पहुँच गए। अब दोनों राजाओं को बड़ी जिज्ञासा थी कि आखिर भाग्य का लिखा बदल कैसे गया? जिसके भाग्य में जीत थी, उसे हार मिली और जिसके भाग्य में हार थी, उसे जीत मिली। आखिर कैसे? आखिर यह कैसे संभव हुआ? दोनों राजाओं ने यह प्रश्न महात्मा जी से पूछा।

"महात्मा जी ने मुस्कराते हुए कहा—'राजन् भाग्य नहीं बदला, वो तो बिलकुल अपनी जगह पर सही है, पर तुम लोग बदल गए।' उन्होंने विजेता राजा की ओर इशारा करते हुए कहा—'अब आपको ही देखो राजन्! आपने संभावित हार के बारे में सुनकर दिन-रात एक कर दिया, सब कुछ भूलकर आप जबरदस्त तैयारी में जुट गए, यह सोचकर कि परिणाम चाहे जो भी हो, पर हार नहीं मानूँगा। आपने हर बिंदु का ध्यान रखा।'

"महात्मा जी ने आगे कहा—'आपने स्वयं ही कुशल रणनीति बनाई; जबकि पहले आपकी योजना सेनापति के भरोसे युद्ध लड़ने की थी।' फिर महात्मा जी ने पराजित राजा की ओर इशारा करते हुए कहा—'राजन् आपने तो युद्ध से पहले ही जीत का उत्सव मनाना शुरू कर दिया था। आपने तो अपने घोड़े की नाल तक का ख्याल नहीं रखा, फिर आप इतनी बड़ी सेना को कैसे सँभालते और कैसे उसको कुशल नेतृत्व देते और हुआ वही, जो होना लिखा था, जो होना ही चाहिए था। भाग्य नहीं बदला, पर जिनके भाग्य में जो लिखा था उन्होंने स्वयं को ही बदल लिया, फिर बेचारा भाग्य क्या करता।'

"दोनों राजाओं को महात्मा जी की बात समझ में आ गई। यह कहानी यह स्पष्ट करती है कि कर्म

ही प्रधान है। कर्म अच्छा है तो भाग्य भी अच्छा होगा और कर्म बुरा है तो भाग्य भी बुरा ही होगा। क्यों? क्योंकि कर्म ही भाग्य के रूप में परिणत होता है। कर्म ही भाग्य के रूप में अभिव्यक्त होता है। कर्म यदि बीज है तो भाग्य उस बीज से प्रकट हुआ वृक्ष है।

"यदि बीज बबूल का है तो उस बीज से बबूल का वृक्ष ही प्रकट होगा और यदि बीज आम का है तो उस बीज से आम का वृक्ष ही प्रकट होगा। उसी प्रकार अच्छे कर्म, पुण्य कर्म, शुभ कर्म ही अच्छे भाग्य के रूप में व्यक्त होते हैं, अभिव्यक्त होते हैं, परिणत होते हैं, प्रकट होते हैं। भाग्य कुछ और नहीं, बल्कि अतीत में या वर्तमान में हमारे द्वारा किए गए कर्मों की ही अभिव्यक्ति है।

"वही हमारे कर्मों की छाया है, हमारे कर्मों का प्रतिबिंब है, हमारे कर्मों का प्रतिफल है। जहाँ पौरुष है, पुरुषार्थ है, दृढ़ इच्छाशक्ति है, प्रचंड मनोबल, आत्मबल है वहीं विजयश्री है, वहीं जीत है, वहीं सफलता है, वहीं जय-जयकार है और जहाँ आलस्य है, अकर्मण्यता है, प्रमाद है, वहीं हार है, वहीं असफलता है। इसलिए हमारे शास्त्रों में कर्म करने को ही, पुरुषार्थ करने को ही महत्त्वपूर्ण माना गया है।"

वेदों में कहा गया है—

महः पार्थिवे सदने यतस्व।

—ऋग्वेद-1.169.6

अर्थात इस विशाल संसार में प्रयत्न करो।

वावृधुः सौभगाय। *—ऋग्वेद-5.60.5*

अर्थात सौभाग्यशाली बनने के लिए पुरुषार्थ करो।

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।

—ऋग्वेद-4.33.11

अर्थात परिश्रम किए बिना देवता किसी के मित्र नहीं बनते।

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तम्।

—ऋग्वेद-8.2.18

अर्थात देवता पुरुषार्थी को चाहते हैं।

विश्वे देवास इह वीरयध्वम्।

—ऋग्वेद-10.128.5

अर्थात सब बुद्धिमानों को इस संसार में पुरुषार्थ करना चाहिए।

उत्क्राम महते सौभगाय।

—यजुर्वेद-11.21

अर्थात महान सौभाग्य प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करो।

यन्ति प्रमादमतन्द्राः।

—अथर्ववेद-20.18.3

अर्थात पुरुषार्थी लोग परम आनंद को प्राप्त करते हैं।

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।

—अथर्ववेद-7.50.8

अर्थात कर्म मेरे दाएँ हाथ में है और जय मेरे बाएँ हाथ में।

मन्द्रा कृणुध्वं।

—ऋग्वेद-10.101.2

अर्थात हे मनुष्यो! अच्छे कर्म करो।

स्वेन क्रतुना सं वदेत।

—ऋग्वेद-10.31.2

अर्थात मनुष्य अपने कार्य से बोले।

सखायः क्रतुमिच्छत। *—ऋग्वेद-8.70.13*

अर्थात हे मित्रो! उत्तम कर्म करने का संकल्प करो।

गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने हमें फल की चिंता किए बगैर कर्म करने की प्रेरणा दी है।

गीता (2/47-48) में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥
योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

अर्थात तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।

हे धनंजय! तू आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्त्तव्य कर्मों को कर। समत्व की स्थिति में होना ही योग कहलाता है।

यह जीवन, यह संसार कर्मप्रधान है। कर्म की प्रधानता को प्रकाशित करते हुए मानसकार ने लिखा है—

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥
सकल पदारथ हैं जग माहीं।
कर्महीन नर पावत नाहीं॥

अर्थात यह विश्व, यह जगत् कर्मप्रधान है। जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। इस संसार में सभी प्रकार के पदार्थ सुलभ हैं। इस संसार में किसी पदार्थ की कोई कमी नहीं है, पर कर्महीन मनुष्य को कुछ भी प्राप्त नहीं होता; क्योंकि इस संसार में कुछ पाने के लिए पहले उद्यमरूपी कर्म करना पड़ता है। कर्म की महत्ता को लेकर संत कबीर ने भी क्या खूब कहा है—

कीन्हें बिना उपाय के, देव कबहु नहिं देत।
खेत बीज बोवै नहीं, तो क्यों जामेंगे खेत॥

अर्थात स्वयं उपाय करने से ही फल प्राप्त होता है, बिना परिश्रम के देव भी कुछ नहीं देता। खेत में यदि बीज बोया ही नहीं तो खेत में क्या जमेगा। कर्म और भाग्य को स्पष्ट करते हुए स्वामी विवेकानंद ने कहा है कि अपने विचारों पर नियंत्रण रखो, नहीं तो वे तुम्हारा कर्म बन जाएँगे और अपने कर्मों पर नियंत्रण रखो नहीं तो वे तुम्हारा भाग्य बन जाएँगे। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है। वह अपने कर्मों से ही अच्छे या बुरे भाग्य का निर्माण करता है।

वहीं परमपूज्य गुरुदेव ने भी स्पष्ट किया है कि '**मनुष्य जैसा सोचता है, वह वैसा ही करता है और वह वैसा ही बन जाता है। कर्म और भाग्य एकदूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं। भाग्य कुछ और नहीं, बल्कि कर्मों की ही अभिव्यक्ति है। यदि कर्म श्रेष्ठ हैं तो भाग्य श्रेष्ठ होगा ही और यदि कर्म निकृष्ट हैं तो भाग्य भी वैसा ही होगा और निस्संदेह मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है। वह स्वयं को जैसा चाहे, वैसा बना सकता है।**'

राष्ट्रकवि श्री रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित कविता की प्रस्तुत पंक्तियों से भी यही भाव मुखरित हो रहे हैं—

मानव जब जोर लगाता है,
पत्थर पानी बन जाता है।
सच है, विपत्ति जब आती है,
कायर को ही दहलाती है,
शूरमा नहीं विचलित होते,
क्षण एक नहीं धीरज खोते,
विघ्नों को गले लगाते हैं,
काँटों में राह बनाते हैं।
जो आ पड़ता सब सहते हैं,
उद्योग-निरत नित रहते हैं,

शूलों का मूल नसाने को,
बढ़ खुद विपत्ति पर छाने को।
है कौन विघ्न ऐसा जग में,
टिक सके वीर नर के मग में,
खम ठोंक ठेलता है जब नर,
पर्वत के जाते पाँव उखड़।
मानव जब जोर लगाता है,
पत्थर पानी बन जाता है।
बत्ती जो नहीं जलाता है,
रोशनी नहीं वह पाता है,
मेहँदी जब सहती है प्रहार,
बनती ललनाओं का सिंगार।
जब फूल पिरोये जाते हैं,
हम उनको गले लगाते हैं।
वसुधा का नेता कौन हुआ?
भूखंड-विजेता कौन हुआ?
अतुलित यश-क्रेता कौन हुआ?
नव-धर्म प्रणेता कौन हुआ?
जिसने न कभी आराम किया,
विघ्नों में रहकर नाम किया।
जब विघ्न सामने आते हैं,
सोते से हमें जगाते हैं,
मन को मरोड़ते हैं पल-पल,
तन को झँझोरते हैं पल-पल।
सत्पथ की ओर लगाकर ही,
जाते हैं हमें जगाकर ही।
पौरुष के हैं साधन प्रचंड,
वन में प्रसून तो खिलते हैं,
बागों में शाल न मिलते हैं।
विपदाएँ दूध पिलाती हैं,
लोरी आँधियाँ सुनाती हैं।
जो लाक्षा-गृह में जलते हैं,
वे ही शूरमा निकलते हैं।
बढ़कर विपत्तियों पर छा जा,
मेरे किशोर! मेरे ताजा!
जीवन का रस छन जाने दे,
तन को पत्थर बन जाने दे।
मानव जब जोर लगाता है,
पत्थर पानी बन जाता है।

अस्तु यह स्पष्ट ही है कि यदि मनुष्य में प्रचंड आत्मबल हो, प्रचंड संकल्पबल हो, प्रचंड मनोबल हो तो उसके पौरुष की गर्जना के समक्ष सागर भी, पर्वत भी उसे रास्ता देने को विवश हो जाते हैं।

बड़ी-बड़ी विपदाएँ भी उसे अपने लक्ष्य से विचलित नहीं कर पाती हैं। उसके लिए विपरीत परिस्थितियाँ भी अनुकूल होती जाती हैं। वह चाहे तो खेल, उद्योग, अध्यात्म, अंतरिक्ष, शिक्षा, व्यवसाय आदि किसी भी क्षेत्र विशेष में सफलता के शीर्ष तक जा पहुँचता है। जैसे वह कुशल मूर्तिकार कठोर पाषाण को तराशकर उसे मनचाही मूर्ति, आकृति, और आकार का रूप दे देता है वैसे ही पौरुषवान व्यक्ति, अपने पुरुषार्थ से, श्रेष्ठ कर्म से अपने जीवन को मनचाहा आकार दे पाता है और स्वंय अपने हाथों से ही अपने भाग्य को गढ़ता है, रचता है और सुख, सौभाग्य तथा आनंद का अधिपति बनता है।

अस्तु हमारा कर्म ही बीज है और भाग्य उसी बीज से प्रकट हुआ वृक्ष है। भाग्य उसी वृक्ष में लगे हुए खट्टे या मीठे फल हैं। अस्तु हमें उपनिषद् का यह संदेश सदैव स्मरण रखना चाहिए कि

उठो! जागो और तब तक संघर्ष करो,
जब तक मंजिल मिल न जाए।

❑

देवशक्तियाँ

देवशक्तियाँ वस्तुत: प्राण-ऊर्जा का ही एक रूप हैं। भौतिक जगत् में व्याप्त क्रियाशीलता उनकी आधिभौतिक अभिव्यक्ति है तो वहीं परोक्ष जगत् में प्रसारित चेतनात्मक ऊर्जा उनकी आध्यात्मिक अभिव्यक्ति है। किसी भी वस्तु की उपस्थिति तीन आयामों में होती है। जिस तरह मानवीय शरीर को स्थूल, सूक्ष्म व कारण रूपों में विद्यमान माना गया है, उसी तरह से देवशक्तियाँ भी आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक आयामों में अपना कार्यक्षेत्र बनाती हैं।

देवों को प्रजापति की अतिसृष्टि कहा गया है; क्योंकि सृष्टि का क्रम इनके उपरांत हुआ माना जाता है। अमृतों की पाँच कोटियाँ हैं और इन पंचामृत के पाँच देव वर्ग हैं। पहला वर्ग वसुगण का है और वे अग्निमुख द्वारा अमृत धारण करते हैं। रुद्रगण—इंद्र के माध्यम से, आदित्यगण—वरुणदेव के माध्यम से, मरुद्गण—सोमदेव के माध्यम से एवं साध्यगण—ब्रह्मरूपी मुख से उस अमृत-वर्षा को प्राप्त करते हैं जो देवशक्तियों को चेतनता प्रदान करती है।

इन पाँच प्रद्यप देव वर्गों के अतिरिक्त अश्विनीकुमारों को और विश्वेदेवा को भी इसी श्रेणी में लिया जाता है। अश्विनीकुमार देवताओं के वैद्य हैं तो वहीं विश्वेदेवा देवताओं की सबसे ऊँची कोटि है, जिन्हें अतिसूक्ष्म चिन्मय शक्तियों के रूप में स्वीकारा जाता है।

आदित्य को विश्व का नेत्र कहकर पुकारा गया है तो वहीं वसु—शब्द-संवाहक एवं शब्द-प्रदाता के रूप में गिने जाते हैं। अपनी तेजस्विता से भस्मीभूत कर देने वाली शक्ति रुद्रगणों की है तो वहीं तीक्ष्ण भेदन की सामर्थ्य से संपन्न वायु के देवता मरुद्गण हैं। साध्यगण और भी अधिक सूक्ष्मतर ऊर्जा के स्वामी हैं।

अश्विनीकुमारों का कार्य प्रसरण, विसरण या फैलना है और वे देवगणों की श्रेष्ठता के स्तर को सुरक्षित रखने का कार्य करते हैं। विश्वेदेवा, वस्तुत: श्रेष्ठतम देवशक्तियाँ हैं, जो अंतरिक्ष के अज्ञात प्रदेशों से आती हैं।

इस तरह देवशक्तियाँ अंतरिक्ष में व्याप्त चेतनता का प्रतीक हैं। बिना श्रद्धा के उन देवसत्ताओं की अनुभूति कर पाना संभव नहीं हो पाता और न ही उनके अनुदानों को प्राप्त कर पाना संभव हो पाता है। श्रद्धा ही उन देवशक्तियों से हमें जोड़ती है। ❑

अतीतानागतान् सर्वान् पितृवंशांस्तु तारयेत्।
कान्तारे वृक्षरोपी यस्तस्माद् वृक्षांस्तु रोपयेत्॥

अर्थात जो वीरान एवं दुर्लभ स्थानों में वृक्ष लगाता है, वह अपनी बीती और आने वाली पीढ़ियों को तार देता है। इसलिए वृक्ष अवश्य लगाना चाहिए।

महान योद्धा और समाज-सुधारक परशुराम

भगवान विष्णु के दशावतारों में से एक माने जाने वाले भगवान परशुराम के साथ भी कुछ अद्‌भुत हुआ माना जाता है। उनके आक्रोश और पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियविहीन करने की घटना को तो खूब प्रचारित कर वैमनस्य फैलाने का उपक्रम किया जाता है, पर उनके व्यक्तित्व के अन्य पक्षों को भुला दिया जाता है।

पिता की आज्ञा पर माँ रेणुका का सिर धड़ से अलग करने की घटना को भी एक आज्ञाकारी पुत्र के रूप में प्रेरक आख्यान बनाकर सुनाया जाता है, किंतु सवाल खड़ा होता है कि क्या व्यक्ति केवल चरम हिंसा के बूते जननायक के रूप में स्थापित होकर लोकप्रिय हो सकता है ? क्या हैहयवंश के नरेश कार्तवीर्य अर्जुन के वंश का समूल नाश करने के बावजूद पृथ्वी क्षत्रियों से विहीन हो पाई।

रामायण और महाभारतकाल में तो पृथ्वी पर क्षत्रिय राजाओं के ही राज्य रहे। वे ही उनके अधिपति हुए। इक्ष्वाकु वंश के मर्यादा पुरुषोत्तम राम को आशीर्वाद देने वाले, कौरव नरेश धृतराष्ट्र को पांडवों से संधि करने की सलाह देने वाले और सूत-पुत्र कर्ण को ब्रह्मशास्त्र की दीक्षा देने वाले परशुराम ही थे।

ये सब क्षत्रिय थे। इस रूप में विवेचन किया जाए तो भगवान परशुराम क्षत्रियों के शत्रु नहीं, बल्कि शुभचिंतक ही थे। वास्तविकता में भगवान परशुराम आततायी शासकों के प्रबल विरोधी थे। पौराणिक आख्यानों का विवेचन-विश्लेषण किया जाए तो समाज-सुधार और जनता को स्वावलंबन से जोड़ने में भगवान परशुराम की अहम भूमिका अंतर्निहित है।

केरल, कच्छ और कोंकण क्षेत्रों में जहाँ परशुराम ने समुद्र में डूबी खेती योग्य भूमि निकालने की तकनीक सुझाई तो वहीं अपने परशु का उपयोग कर जंगलों को साफ कर भूमि को कृषियोग्य बनाने का दायित्व भी निभाया।

इन्हीं परशुराम ने हेय माने जाने वाले दरिद्रनारायणों को शिक्षित व दीक्षित कर विप्र बनाया। उन्हें यज्ञोपवीत संस्कार से जोड़ा और उस समय जो दुराचारी व आचरणहीन थे, उनका सामाजिक बहिष्कार किया।

परशुराम के अंत्योदय के प्रकल्प अनूठे व अनुकरणीय हैं। आज के दौर में उन्हें प्रेरणास्वरूप रेखांकित किए जाने की जरूरत है। पौराणिक आख्यानों के अनुसार जमदग्निपुत्र परशुराम का जन्म हरिश्चंद्रकालीन विश्वामित्र से एक-दो पीढ़ी बाद का माना जाता है। यह समय प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में 'अष्टादश परिवर्तन-युग' के नाम से जाना गया है अर्थात यह 7500 विक्रम पूर्व का समय ऐसे संक्रमण काल के रूप में ज्ञात है, जिसे परिवर्तन का युग माना गया।

इसी समय क्षत्रियों की शाखाएँ—दो कुलों में विभाजित हुईं। एक सूर्यवंश और दूसरा चंद्रवंश। चंद्रवंशी पूरे भारतवर्ष में छाए हुए थे और उनका प्रताप चरमोत्कर्ष पर था। हैहय अर्जुन वंश चंद्रवंशी था। माहिष्मती नरेश कार्तवीर्य अर्जुन इसी कुल के वंशज थे। भृगु ऋषि इस वंश के राजगुरु थे। जमदग्नि राजगुरु-परंपरा का निर्वाह कार्तवीर्य अर्जुन के दरबार में कर रहे थे, किंतु अनीतियों का विरोध करने के कारण कार्तवीर्य अर्जुन और जमदग्नि में मतभेद हो गए।

परिणामस्वरूप जमदग्नि महिष्मति राज्य छोड़ कर चले गए। इस गतिविधि से रुष्ट होकर सहस्त्रबाहु कार्तवीर्य अर्जुन आखेट का बहाना करके अनायास जमदग्नि के आश्रम में सेना सहित पहुँच गया। ऋषि जमदग्नि ने अतिथि-सत्कार किया, लेकिन स्वेच्छाचारी और युद्धोन्मादी अर्जुन ने प्रतिहिंसास्वरूप जमदग्नि की हत्या कर दी।

उसने पूरा आश्रम उजाड़ दिया और ऋषि की प्रिय कामधेनु गाय को छीनकर ले गया। आश्रम के अनेक ब्राह्मणों ने कान्यकुब्ज के राजा गाधि के राज्य में शरण ली। परशुराम जब यात्रा से लौटे तो इस घटना से कुपित व क्रोधित होकर उन्होंने हैहयवंश के विनाश का संकल्प लिया और इस हेतु पूरी सामरिक राजनीति को अंजाम दिया।

परशुराम ने दो वर्ष तक लगातार ऐसे सूर्यवंशी और यादववंशी राज्यों की यात्राएँ की जो हैहय चंद्रवंशियों के प्रबल विरोधी थे। नेतृत्व-दक्षता के कारण परशुराम को ज्यादातर चंद्रवंशियों ने समर्थन दिया। उन्होंने अपनी सेनाएँ और शस्त्र परशुराम की अगुवाई में छोड़ महायुद्ध की पृष्ठभूमि तैयार की।

अवन्तिका के यादव, विदर्भ के शर्यात यादव, पंचनद के द्रुह यादव, कान्यकुब्ज (कन्नौज) के गाधिचंद्रवंशी आर्यवर्त सम्राट सुदास सूर्यवंशी, गांगेय प्रदेश के काशीराज, गांधार नरेश मांधाता, अविस्थान (अफगानिस्तान), मुजावत (हिंदुकुश), मेरु (पामिर), श्री (सीरिया), परशुपुर (वर्तमान पारस), सुसर्तु (पंजक्षीर), उत्तर कुरु (चीनी सतुर्किस्तान), वल्क, आर्याण (ईरान), देवलोक (सप्तसिंधु), और अंग-बंग (बिहार के संथाल परगना से बंगाल व असम तक) के राजाओं ने परशुराम का नेतृत्व स्वीकारते हुए इस महायुद्ध में भागीदारी की। शेष रह गई जातियाँ चेदि (चंदेरी) नरेश, कौशिक यादव, रेवत तुर्वसु, अनूप, रोचमान इत्यादि कार्तवीर्य अर्जुन की ओर से लड़ीं।

इस भीषण युद्ध में कार्तवीर्य अर्जुन और उसके कुल के लोग तो मारे ही गए, अर्जुन का साथ देने वाली जातियों के वंशजों का भी नाश हुआ। भरतखंड के इस महायुद्ध में परशुराम ने अहंकारी व उन्मत्त क्षत्रिय राजाओं का अंत कर लोहित क्षेत्र अर्थात अरुणाचल पहुँचकर ब्रह्मपुत्र नदी में अपना फरसा धोया। बाद में यहाँ पाँच कुंड बनवाए गए। जिन्हें समंतपंचका रुधिर कुंड कहा जाता है। ये कुंड आज भी अस्तित्व में हैं। इन्हीं कुंडों में भृगुकुलभूषण परशुराम ने युद्ध में हताहत हुए भृगु व सूर्यवंशियों का तर्पण किया। इस विश्वयुद्ध का समय 7200 विक्रम संवत् पूर्व माना जाता है। जिसे उन्नीसवाँ युग कहा गया है।

इस युद्ध के बाद परशुराम ने समाज-सुधार व कृषि के प्रकल्प अपने हाथ में लिए। उन्होंने केरल, कोंकण, मालाबार और कच्छ क्षेत्र में समुद्र में डूबी कृषियोग्य भूमि को बाहर निकाला था। इस समय कश्यप ऋषि और इंद्र समुद्री पानी को बाहर निकालने की तकनीक में निपुण थे। अगस्त्य को समुद्र का पानी पी जाने वाले ऋषि और इंद्र को जल का देवता इसीलिए माना जाता है। परशुराम ने इस क्षेत्र में अपने परशु का उपयोग रचनात्मक कार्य के लिए किया। उपजाऊ कृषि भूमि तैयार की।

परशुराम ने शूद्रों को भी शिक्षित व दीक्षित कर जनेऊ धारण कराए और अक्षय तृतीया के दिन एक साथ हजारों युवक-युवतियों को परिणय सूत्र में बाँधा। परशुराम द्वारा अक्षय तृतीया के दिन सामूहिक विवाह किए जाने के कारण ही इस दिन को परिणय बंधन के लिए बिना किसी मुहूर्त के शुभ मुहूर्त माना जाता है। दक्षिण भारत देश का वह क्षेत्र है, जहाँ परशुराम के सबसे ज्यादा मंदिर मिलते हैं और उनके अनुयायी उन्हें भगवान के रूप में पूजते हैं। इस प्रकार भगवान परशुराम ने अनीति का अंत किया और धरती में जीवनयोग्य कृषिभूमि का निर्माण किया। ❑

अमृतकलशहस्ताय, सर्वभयविनाशाय

कार्तिक मास की कृष्ण पक्ष त्रयोदशी को भगवान धन्वंतरि का आविर्भाव हुआ था। व्यापारियों, चिकित्सा एवं औषधि विज्ञान के लिए यह दिन अति शुभ माना जाता है। दीपावली से दो दिन पूर्व धन्वंतरि जयंती मनाई जाती है।

महर्षि धन्वंतरि आयुर्वेद एवं स्वस्थ जीवन प्रदान करने वाले देवता के रूप में भी पूजनीय हैं। जिस प्रकार धन-वैभव के लिए देवी लक्ष्मी की पूजा-अर्चना करते हैं, ठीक उसी प्रकार स्वस्थ जीवन के लिए स्वास्थ्य के देवता धन्वंतरि की आराधना की जाती है। धन्वंतरि आरोग्यदाता हैं।

भगवान धन्वंतरि जब प्रकट हुए थे तो उनके हाथों में अमृत से भरा कलश था। भगवान धन्वंतरि कलश लेकर प्रकट हुए थे, इसलिए ही इस अवसर पर बरतन खरीदने की परंपरा है। लोकमान्यता के अनुसार यह भी कहा जाता है कि इस दिन धन (वस्तु) खरीदने से उसमें तेरह गुना वृद्धि होती है। इस अवसर पर लोग धनिया के बीज खरीदकर भी घर में रखते हैं। दीपावली के बाद इन बीजों को लोग अपने बाग-बगीचों में या खेतों में बोते हैं।

धनतेरस पर पूजा का विशेष महत्त्व होता है। इस दिन लक्ष्मी-गणेश और कुबेर की भी पूजा की जाती है। इस पावन दिवस में स्वास्थ्य और औषधियों के देवता धन्वंतरि की सबसे महत्त्वपूर्ण पूजा होती है। इन सभी पूजाओं को घर में करने से स्वास्थ्य और मंगल के लिए कामना करते हैं। अपने पूजागृह में जाकर **धं धन्वन्तरये नमः** मंत्र का 108 बार उच्चारण करना चाहिए।

स्वास्थ्य के भगवान धन्वंतरि आरोग्य प्रदान करते हैं, इसलिए इस दिन उनकी पूजा-अर्चना करके उनसे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की प्रार्थना करते हैं। ऐसी मान्यता है कि इस दिन धन्वंतरि की पूजा करने से स्वास्थ्य सही रहता है। धन्वंतरि की पूजा के बाद लक्ष्मी और गणेश का पूजन किया जाता है।

सबसे पहले गणेश जी को दीया अर्पित करते हैं और धूपबत्ती लगाते हैं। इसके बाद गणेश जी के चरणों में फूल और मिष्टान्न अर्पण करते हैं। इसी प्रकार लक्ष्मी का भी पूजन करते हैं। इसके अलावा इस दिन कुबेर देवता की भी पूजा की जाती है। धनतेरस पूजन के लिए सबसे पहले एक लकड़ी का पट्टा लेना चाहिए और उस पर स्वस्तिक का निशान बनाना चाहिए।

धनतेरस के दिन चाँदी खरीदने की भी परंपरा है। यदि संभव न हो तो कोई बरतन खरीद सकते हैं। चाँदी चंद्रमा का प्रतीक है, जो शीतलता प्रदान करता है और मन में संतोषरूपी धन का संचार करता है।

संतोष सबसे बड़ा धन है। जिसके पास संतोष है वह स्वस्थ है, सुखी है और वही सबसे धनवान है। भगवान धन्वंतरि जो चिकित्सा के देवता भी हैं, उनसे स्वास्थ्य और संतोष की कामना के लिए प्रार्थना की जाती है। इस दिन ही दीपावली की रात लक्ष्मी-गणेश की पूजा के लिए मूर्ति खरीदने की भी परंपरा है।

धनतेरस की शाम घर के बाहर मुख्य द्वार पर और आँगन में दीप जलाने की प्रथा भी है। इस प्रथा

के पीछे एक लोककथा प्रचलित है। कथा के अनुसार प्राचीन समय में एक राजा थे, जिनका नाम हेम था।

दैव कृपा से उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। सात ज्योतिषियों ने जब बालक की कुंडली बनाई तो पता चला कि बालक का विवाह जिस दिन होगा, उसके ठीक चार दिन के बाद वह मृत्यु को प्राप्त होगा। राजा इस बात को जानकर बहुत दु:खी हुआ और राजकुमार को ऐसे स्थान पर भेज दिया, जहाँ किसी स्त्री की परछाईं भी न पड़े।

दैवयोग से एक दिन एक राजकुमारी उधर से गुजरी और दोनों एकदूसरे को देखकर मुग्ध हो गए और उन्होंने गंधर्व विवाह कर लिया। विवाह के पश्चात विधि का विधान सामने आया और विवाह के चार दिन बाद यमदूत उस राजकुमार के प्राण लेने आ पहुँचे। जब यमदूत राजकुमार के प्राण लेकर जा रहे थे, उस समय उसकी नवविवाहिता पत्नी का विलाप सुनकर उनका हृदय भी द्रवित हो उठा, परंतु विधि के विधान के अनुसार उन्हें अपना कार्य करना पड़ा।

यमराज से एक यमदूत ने विनती की—"हे! यमराज क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है, जिससे मनुष्य अकाल मृत्यु से मुक्त हो जाए।" यमदूत के इस प्रकार अनुरोध करने से यम देवता बोले—"हे! दूत अकाल मृत्यु तो कर्म की गति है, इससे मुक्ति का एक आसान तरीका मैं तुम्हें बताता हूँ। कार्तिक कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी रात को जो जीव मेरे नाम से पूजन करके दीपमाला दक्षिण दिशा की ओर भेंट करता है, उसे अकाल मृत्यु का भय नहीं रहता है। इसी कारण लोग इस दिन घर से बाहर दक्षिण दिशा की ओर दीप जलाकर रखते हैं।

धन्वंतरि देवताओं के चिकित्सक हैं और चिकित्सा के देवता माने जाते हैं, इसलिए चिकित्सकों के लिए धनतेरस का दिन बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है। धनतेरस की शाम यम के नाम पर दक्षिण दिशा में दीप जलाकर रखने से अकाल मृत्यु नहीं होती है। इस मान्यता के अनुसार धनतेरस की शाम लोग आँगन में दीप जलाते हैं और यमदेवता के नाम पर व्रत भी रखा जाता है।

धनतेरस के दिन दीप जलाकर भगवान धन्वंतरि की पूजा करते हैं। भगवान धन्वंतरि से स्वास्थ्य और संतोष बनाए रखने की प्रार्थना करते हैं। इस दिन चाँदी का कोई बरतन या लक्ष्मी-गणेश अंकित चाँदी का सिक्का खरीदना चाहिए। नए बरतन में दीपावली की रात भगवान श्री गणेश व देवी लक्ष्मी के लिए भोग समर्पित किया जाता है।

ऋषियों का धर्म, सनातन धर्म—अनंतकाल से है और रहेगा। इस सनातन धर्म के भीतर निराकार, साकार सभी प्रकार की पूजाएँ हैं। ज्ञानपथ, भक्तिपथ सभी हैं। अन्य जो संप्रदाय हैं, आधुनिक हैं। कुछ दिन रहेंगे, फिर मिट जाएँगे।

—स्वामी रामकृष्ण परमहंस

धन्वंतरि त्रयोदशी से जीवन में निरोगता व स्वास्थ्य लाभ प्राप्त हो पाता है और राष्ट्रीय जीवन प्रकाशमान हो पाता है। प्रकाश पर्व दीपोत्सव का शुभारंभ धन्वंतरि त्रयोदशी से ही होता है। सारांश में पंचदिवसीय दीपोत्सव (दीपावली) में देवों की प्रधानता (पूजन) क्रमश: (1) भगवान धन्वंतरि, (2) भगवान यम (3) देवी महालक्ष्मी (4) गोवर्धन (5) भैया दूज पूजन है, जो भारतीय संस्कृति का आधार है।

इस प्रकार धनतेरस पर्व के महत्त्व को समझते हुए इसे बहुत श्रद्धा और भक्ति-भाव से मनाना चाहिए, ताकि जीवन में स्वास्थ्य, समृद्धि और संतोष की प्राप्ति हो सके। ❑

विज्ञान एवं अध्यात्म का समन्वय

विज्ञान के अनुसार अंतरिक्ष व उसकी अंतर्वस्तु को ब्रह्मांड कहते हैं। ब्रह्मांड में सभी ग्रह, तारे, आकाशगंगाएँ, अपरमाणविक कण, सारा पदार्थ और सारी ऊर्जा सम्मिलित है।

इस प्रकार ब्रह्मांड के दो स्वरूप माने गए हैं। एक भौतिक तथा दूसरा आध्यात्मिक स्वरूप। भौतिक स्वरूप वह है, जो हमें प्रत्यक्ष रूप से अपनी आँखों से दिखाई देता है, कानों से सुनाई पड़ता है, नाक से गंध का बोध कराता है, जिह्वा से स्वाद की पहचान कराता है।

भौतिक जगत् ब्रह्मांड में उपस्थित वस्तुओं का प्रकटीकरण है। जड़ और चेतन पदार्थ जैसे भी दृष्टि के सम्मुख होते हैं, उन्हें उसी रूप में स्वीकार कर व्यक्ति अपने भौतिक शरीर की सुविधाओं हेतु उनका प्रयोग करता है।

आध्यात्मिक जगत् भौतिकता को स्वीकारता है, किंतु यह मानता है कि ब्रह्मांड में भौतिक तत्त्वों का सृजन किसी परम शक्ति के माध्यम से ही हुआ है तथा वही परम शक्ति समूचे ब्रह्मांड का संचालन कर रही है।

वह परम सत्ता जिसे परमात्मा कहते हैं, उसकी क्रियाशीलता ही प्रकृति है। धर्म चाहे कोई भी हो, मार्ग चाहे कोई भी अपनाया जाए परंतु पूजा, शक्ति की ही होती है। शक्ति परम सत्ता का ही पर्याय है। विचारणीय है कि परम सत्ता की पहचान किस प्रकार संभव है ? इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि आडंबरयुक्त पूजा पद्धतियों से परम सत्ता का दर्शन नहीं किया जा सकता।

निर्गुण भक्तिशाखाएँ एवं सगुण भक्तिशाखाएँ विपरीत दिशाओं में परम सत्ता को अनुभव करने का प्रयास करती रही हैं, किंतु सच्चे अर्थों में परमसत्ता का अनुभव प्राप्त करना उनके लिए भी आसान एवं सरल नहीं रहा है। हम वैचारिक धरातल पर आस्तिक और नास्तिक जैसी आस्थाओं में सिमटकर तर्क–कुतर्क करने में विश्वास रखते हैं। जब कभी हम शांतिपूर्ण वातावरण में स्थिर होकर मनन करते हैं, तब हमें सत्य का एहसास अवश्य होता है।

सत्य धर्म की संकीर्ण परिभाषाओं में बँधकर छटपटाहट का अनुभव करता है। विशिष्ट पूजा–पद्धतियाँ उसे कृत्रिमता का बोध कराती हैं। वह स्वतंत्र होना चाहता है। सभी बंधनों से मुक्त होना चाहता है। निश्चय ही प्राणी का जन्म किसी धर्म, जाति या संप्रदाय में नहीं होता। जातीय बंधन उसे समाज ने प्रदान किए हैं।

प्रकृति ने मानवस्वरूप प्रदान करके हमें सभी प्राणियों में श्रेष्ठता प्रदान की है। उसी श्रेष्ठता को हम संकीर्णता के दायरे में ढालकर स्वयं के लिए बेड़ियाँ बुन रहे हैं। संकीर्ण विचारधाराएँ समाज में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर रही हैं। समूचे विश्व में जातीय और धार्मिक उन्माद का कारण यही संकीर्णता है। यह विश्वशांति भंग कर रही है।

ऐसे चिंतन से मानवमात्र के कल्याण की सर्वोपरि कामना व्यक्त होती है। समाज, विचारों को यथार्थ के धरातल पर उतारने से ही विकसित होता है।

समाज के कल्याण की पृष्ठभूमि '**सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः**' की भावना से ही संभव है, जिसके लिए संकीर्ण बंधनकारी विचारों एवं क्रियाकलापों को त्यागना अनिवार्य है।

संकीर्णता चाहे विचारों की हो या भावनाओं की—हमारे विकास को अवरुद्ध करती है। विचार सृजनशील होना चाहिए एवं भावना पवित्र एवं पावन। यही मानवीय विकास का आधार है। ब्रह्मांड सतत विकसित हो रहा है। इस प्रकार हमको भी अपने अंदर की शक्तियों को सक्षम, समर्थ एवं विकसित करना चाहिए और यह तभी संभव है, जब शरीर एवं मन अर्थात भौतिकता एवं आध्यात्मिकता के मध्य हम समुचित समन्वय एवं सामंजस्य स्थापित कर सकें। ❑

एक वीतराग संत थे। संसार का कोई भी विषय उनमें आसक्ति उत्पन्न नहीं करता था। वे गंगा किनारे बैठे रहते और भजन में लीन रहते। भीड़ से दूर रहने के बाद भी अनेक जिज्ञासु ऐसे थे, जो उनके समीप इस आशा में बैठे रहते, ताकि वे कुछ कह दें और उनका भला हो जाए। एक दिन एक दूसरे संत उसी ओर गंगा किनारे आए और उनके पास आकर कुछ देर खड़े रहे। फिर उन्होंने गंगा किनारे पड़ी रेत को अपने सिर पर लगाया और जाने लगे।

यह देखकर वीतराग संत अपने स्थान से खड़े हुए व उनको प्रणाम किया। दोनों संत एकदूसरे को देखकर मुस्कराए और फिर यथास्थान प्रस्थान किया। यह दृश्य देखकर वीतराग संत के निकट उपस्थित लोगों को कुतूहल हुआ।

इस सारी घटना के पीछे के मर्म को जानने की जिज्ञासा वहाँ उपस्थित जनसामान्य ने वीतराग संत के समक्ष प्रकट की तो वे बोले—"भगवान ने गीता में कहा है *'विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति'* —अर्थात नश्वर में जो एक अविनाशी को देखता है, वही वास्तव में सही देखता है। जो संत अभी यहाँ आए थे उन्होंने इस नश्वर संसार में, जिसका प्रतीक मिट्टी है उस अविनाशी आत्मा को देखा, जो कभी विनष्ट नहीं होती। मैंने उनकी उसी दृष्टि को नमन किया।" महात्माओं के प्रत्येक क्रियाकलापों के पीछे कुछ ऐसा होता है, जिसे दिव्य कहा जा सकता है।

सुख-शांति एवं आनंद प्राप्ति के स्वर्णिम सूत्र

हिमाच्छादित कैलास पर्वत पर देवों के देव महादेव, भगवान भोलेनाथ अखंड समाधि में डूबे थे और उधर माता पार्वती लोक-कल्याण की इच्छा से अपनी कुछ लोकहितकारी जिज्ञासाओं व प्रश्नों को भोलेनाथ के समक्ष प्रकट कर उनका समाधान चाहती थीं। वैसे उन जिज्ञासाओं का समाधान तो उनके पास भी था, पर वे उन्हें अपने स्वामी भोलेनाथ के मुखारविंद से ही सुनना चाहती थीं।

सबसे बड़ा धर्म क्या है? सबसे बड़ा पाप क्या है? कर्म करते समय मनुष्य को किस बात का ध्यान रखना चाहिए? जीवन में सफल होने के लिए मनुष्य को क्या करना चाहिए? मनुष्य को सुख और दु:ख कब प्राप्त होता है? आदि कई प्रश्न माता पार्वती के मन में थे। आखिरकार लंबी प्रतीक्षा के बाद भोलेनाथ समाधि से बाहर आए और तब भोलेनाथ की सेवा कर सुअवसर जानकर माता पार्वती ने अपनी सारी जिज्ञासाएँ, सारे प्रश्न भोलेनाथ के समक्ष रखे और भोलेनाथ उनकी जिज्ञासाओं का समाधान करते रहे।

भोलेनाथ बोले—"देवी पार्वती! मनुष्य के लिए सबसे बड़ा धर्म है सत्य बोलना अर्थात सत्यनिष्ठ होना, सत्य का साथ देना, सत्यवान होना, सत्य को अपने जीवन में जीना और असत्य बोलना या असत्य का साथ देना ही सबसे बड़ा अधर्म है। हर किसी को मन, वाणी और कर्म से सत्यवान होना चाहिए, सत्यनिष्ठ होना चाहिए। सत्य के समान कोई तप नहीं है, कोई धर्म नहीं है, कोई पुण्य नहीं है और असत्य के समान कोई अधर्म नहीं है, कोई पाप नहीं है। इसलिए मनुष्य के हर कर्म में सत्य ही प्रतिबिंबित होना चाहिए। मात्र जिह्वा से सत्य वाणी बोलना पर्याप्त नहीं, बल्कि आचरण से, कर्म से सत्य प्रस्तुत होना चाहिए।"

अब अगला प्रश्न था—मनुष्य को कर्म करते समय किस बात का ध्यान रखना चाहिए? इस प्रश्न का समाधान देते हुए भोलेनाथ बोले—"देवी पार्वती! कर्म करते समय मनुष्य को अपने हर कर्म का साक्षी होना चाहिए। उसे यह ध्यान रखना चाहिए कि वह अच्छा या बुरा जो भी कर्म कर रहा है, उसका साक्षी ईश्वर है। वह सर्वव्यापी ईश्वर उसके हर कर्म को देख रहा है। उस सर्वसाक्षी से कभी भी, कुछ भी नहीं छिपाया जा सकता है। अस्तु कर्म करते हुए मनुष्य को इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि उसके हर कर्म का साक्षी सर्वसाक्षी, सर्वव्यापी ईश्वर है।"

महादेव ने आगे कहा—"यह सोचकर मनुष्य को सदा शुभ कर्म, सत्य कर्म, पुण्य कर्म करने चाहिए, जिससे उसे सुख प्राप्त हो सके। जो मनुष्य यह सोचता है कि वह जो कुछ कर रहा है उसे उसके अलावा कोई नहीं देख रहा है, वह जीवन भर अशुभ कर्म, पाप कर्म करता जाता है और उसके परिणामस्वरूप वह दु:ख पाता रहता है। किसी भी मनुष्य को मन, वाणी और कर्म से पाप करने की इच्छा नहीं करनी चाहिए; क्योंकि मनुष्य जैसा सोचता है, वह वैसा ही कर्म करता है, उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। मनुष्य को अपने मन में बुरे विचार नहीं; बल्कि शुभ विचार, सुविचार

रखने चाहिए; जिनसे प्रेरित होकर वह सदा शुभ कर्म, सत्य कर्म कर सके। मन में अशुभ विचार, कुविचार रखने से मनुष्य उन्हीं विचारों से प्रेरित, प्रभावित होकर पाप कर्म करता है।''

भोलेनाथ ने कहा—''मनुष्य को ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए, जिससे औरों को दु:ख पहुँचे। पाप कर्म करने से मनुष्य न सिर्फ वर्तमान जीवन में, बल्कि अगले जीवन में, जन्म में भी दु:ख पाता है। इसलिए शुभ कर्म, सत्य कर्म करने में ही समझदारी है। मन में सदा सुविचार रहे इस हेतु मनुष्य को शास्त्रों का स्वाध्याय व साधु पुरुषों का संग करना चाहिए। पापी और असाधु मनुष्यों का संग नहीं करना चाहिए; क्योंकि मनुष्य की जैसी संगति होती है वह वैसे ही विचार, सुविचार व गुण-दोष ग्रहण करता है, उनसे प्रभावित, प्रेरित होता है व तदनुरूप कर्म करता है।''

माता पार्वती ने पुन: प्रश्न किया—''प्रभु! सफल व सुखी होने के लिए मनुष्य को क्या करना चाहिए?'' भोलेनाथ बोले—''देवी पार्वती! संसार में हर मनुष्य का किसी-न-किसी वस्तु, व्यक्ति, स्थिति, परिस्थिति से लगाव होता है, आसक्ति होती है। मोह, आसक्ति मनुष्य की सफलता में बड़ी बाधा हैं, इसलिए मनुष्य को मोह, आसक्ति से मुक्त होकर कर्म करना चाहिए।''

महादेव बोले—''सफल होने के लिए मनुष्य को कभी भी अनुचित साधन या उपाय का सहारा नहीं लेना चाहिए। सफलता पाने के लिए साधन भी पवित्र ही होने चाहिए; क्योंकि अनुचित व गलत तरीके से प्राप्त सफलता अंतत: दु:खदायी ही होती है और सच्चाई, ईमानदारी व पुरुषार्थ से प्राप्त सफलता सुखदायी होती है।

भोलेनाथ बोले—''अब आपने जो प्रश्न किया है कि सबसे बड़ा सुख और दु:ख क्या है? तो हे देवी पार्वती! इस संबंध में यह बात सत्य है कि मनुष्य की तृष्णाओं यानी इच्छाओं से बड़ा कोई दु:ख नहीं होता और इच्छाओं को छोड़ देने से बड़ा सुख नहीं होता। क्यों? क्योंकि इच्छाएँ ही बंधन हैं और इच्छाओं से मुक्त हो जाना ही मुक्ति है और उसी में सुख है।''

महादेव ने प्रसन्नतापूर्वक माता पार्वती से कहा कि हे पार्वती! लोक-कल्याण की इच्छा से आपने जो प्रश्न किए हैं उनसे मैं आपसे अतिशय प्रसन्न हूँ। इस प्रकार शिव-पार्वती संवाद समाप्त हुआ। सचमुच भगवान शिव और माता पार्वती के इस संवाद में हमारे लिए बड़ा ही अमूल्य संदेश है, प्रेरणा है, जिन्हें आत्मसात् कर हम लोक-परलोक दोनों में सुख-शांति व आनंद पा सकते हैं। ❑

दूसरे देश से आया शिष्टमंडल महामात्य चाणक्य से मिलने पहुँचा। उन्हें आया देख चाणक्य ने कक्ष में रखा दीपक हटाकर दूसरा दीपक रख दिया। शिष्टमंडल के अगुवा ने उनके ऐसा करने का कारण पूछा तो चाणक्य ने उत्तर दिया—''जब आप लोगों ने प्रवेश किया तब मैं व्यक्तिगत कार्यों में संलिप्त था और जो दीपक जल रहा था, वो मेरे निजी धन से लाए गए तेल से जल रहा था। अब जल रहा दीपक राजकोश के धन से जल रहा है; क्योंकि हमारा वार्त्तालाप शासकीय मुद्दों को लेकर है। न हमें राष्ट्रीय संपदा का व्यक्तिगत कार्यों में खरच करने का अधिकार है और न मैं ऐसा करूँगा।''

शिष्टमंडल सदस्य चाणक्य की ईमानदारी से अभिभूत हो गए।

जीवन में सफलता और प्रसन्नता के समन्वय सूत्र

जीवन में सभी सफलता और प्रसन्नता को चाहते हैं। सफलता का विधान जहाँ उपलब्धियों से जुड़ा हुआ है, वहीं प्रसन्नता का संबंध जीवन की संतुष्टि से है। इन कसौटियों पर सफलता प्रायः एकांगी ही पाई जाती है, जिसका प्रसन्नता से अधिक तालमेल नहीं दिखता।

जीवन में सफलता के चरम पर भी व्यक्ति को खिन्न, अशांत-क्लांत एवं दुःखी देखा जाता है। भौतिक एवं सांसारिक उपलब्धियों तथा अनुकूलता के बावजूद व्यक्ति को जीवन की सार्थकता की अनुभूति से वंचित पाया जाता है।

सही समझ व दिशाबोध के अभाव में वे आंतरिक रिक्तता को भरने के लिए नशे, शराब व अन्य व्यसनों तक का सहारा लेते हैं और इनके चंगुल में फँसकर आत्मघाती एवं विध्वंसक पथ पर अग्रसर हो जाते हैं। जीवन ऐसी त्रासदी का शिकार न बने, इसमें सफलता और प्रसन्नता दोनों का समावेश हो, इसका संयोग जुटाना अभीष्ट हो जाता है।

ऋषिप्रणीत सूत्रों के आलोक में इसके चरणों को समझा जा सकता है। प्रथम सूत्र है, जीवन के प्रति समग्र समझ एवं इसके आंतरिक तथा बाह्यस्वरूप के प्रति जागरूकता, जो आत्मचिंतन, स्वाध्याय एवं महापुरुषों के सत्संग से प्राप्त होती है। समझ आता है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है।

इसके साथ जीवन के समग्र विकास की रूपरेखा तैयार होती है, भौतिक के साथ जीवन का आध्यात्मिक पक्ष संतुलित होता है। स्वयं के विकास के साथ परिवार, समाज-राष्ट्र एवं पूरे विश्व के उत्कर्ष का भाव विकसित होता है, जीवन के समग्र उत्कर्ष की समझ स्पष्ट होती है।

इसी के साथ स्वार्थ एवं परमार्थ के संगम-समन्वय की पृष्ठभूमि तैयार होती है। इसके बाद प्रारंभ होता है जीवनलक्ष्य का निर्धारण एवं इसको मूर्तरूप देने की कवायद, जिसका स्वर्णिम सूत्र रहता है—जहाँ खड़े हैं, वहीं से आगे बढ़ें, जो हाथ में है, उसी को साथ ले मंजिल की ओर चल पड़ें। लक्ष्य निर्धारण में यह ध्यान अवश्य रहे कि अपनी रुचि क्या है, प्रकृति व स्वभाव के अनुकूल लक्ष्य का कितना मेल है तथा अपनी क्षमता इसके अनुरूप कैसी है।

यदि क्षमता नहीं है, तो उसे विकसित किया जा सकता है। साथ ही समय की माँग क्या है—इन सबका अपने आत्मिक उत्साह या जुनून के साथ मेल हो सके, तो पग उस दिशा में चल पड़ते हैं, जहाँ बाह्य सफलता एवं आंतरिक संतुष्टि सुनिश्चित हो जाती हैं।

इसी के साथ अनुसरित होती है दैनिक आधार पर अपने लक्ष्य को अंजाम देने की क्षमता एवं सामर्थ्य; जिस क्रम में समय के हर पल, हर मिनट एवं हर घंटे का श्रेष्ठतम सदुपयोग किया जाता है और यह सुनिश्चित होता है प्राथमिकताओं की स्पष्टता के आधार पर। अतः प्रातः उठते ही आत्मबोध के साथ दिनभर के महत्त्वपूर्ण कार्यों की सूची बनाई जाती है, उनको क्रमबद्ध किया जाता है

और फिर प्राथमिकता के आधार पर इन्हें अंजाम दिया जाता है।

महत्त्वपूर्ण एवं तात्कालिक कार्यों को पहले निपटाया जाता है, तात्कालिक रूप से कम महत्त्वपूर्ण किंतु दूरगामी परिणाम वाले कार्यों को इसके उपरांत स्थान दिया जाता है। जो गैर-महत्त्वपूर्ण किंतु तात्कालिक कार्य आते हैं, उनमें दूसरों की मदद ली जा सकती हो, उन्हें दूसरों को सौंपा जा सकता है। गैर-महत्त्वपूर्ण एवं समय व ऊर्जा को नष्ट करने वाले कार्यों से बचा जाता है।

इस तरह हर पल का श्रेष्ठतम उपयोग करते हुए निर्धारित लक्ष्य को साकार करने की दिशा में बढ़ा जाता है। इसके साथ ही संभव होता है, सकारात्मक विचार एवं भावों का संप्रेषण, जिसमें स्वयं के साथ दूसरों का भी हित सधता हो; क्योंकि अपने ध्येय की ओर बढ़ते कदम व्यक्ति को रचनात्मकता के उर्वर स्रोत से जोड़ते हैं, जहाँ सृजन की असीम संभावनाएँ हिलोरें मार रही होती हैं। ऐसे में व्यक्ति जीवन के प्रति आशा, उत्साह से भरा होता है। स्वयं के साथ दूसरे सुपात्रों के उत्कर्ष की सोच रखता है, जरूरतमंदों की मदद करता है तथा एक उद्देश्यपूर्ण समुदाय का हिस्सा बनते हुए, अपना सार्थक योगदान देता है।

इसी पृष्ठभूमि में संभव होता है दूसरों के प्रति संवेदनशील व्यवहार। दूसरों की स्थिति को समझ पाना, उनके दुःख-दरद, वेदना व आवश्यकता का बोध तथा इनके निराकरण के लिए अपना यथासंभव योगदान देना और नहीं तो सांत्वना एवं उत्साहवर्द्धन के दो आत्मीय बोल पीड़ित के घाव पर मलहम का काम करते हैं; उसके मानसिक संताप को हलका करते हैं।

व्यवहार में निष्काम सेवा के ऐसे प्रयोग चित्त को शुद्ध करते हैं, व्यक्ति की भाव-प्रवणता को पुष्ट करते हैं। एक तरह से उनकी इमोशनल इंटेलीजेंस बढ़ती है, समूह एवं समाज में स्वीकार्यता में वृद्धि होती है। व्यक्तित्व में विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता का पुट जीवन में सफलता के नए अवसरों का सृजन करता है।

इस तरह व्यक्ति आत्मकल्याण एवं लोकसेवा के पथ पर बढ़ते हुए बाह्य उपलब्धियों के साथ आंतरिक उत्कृष्टता की राह पर अग्रसर होता है तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में सफलता एवं संतुष्टि के नए स्तर को प्राप्त होता है। जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि होती है और व्यक्ति जीवन में सार्थकता की गहरी अनुभूति के साथ अनुप्राणित होता है।

अलमर्थेन कामेन सुकृतेनापि कर्मणा।
एभ्यः संसारकान्तारे न विश्रान्तम भून्मनः ॥

अर्थात अर्थ, काम और सुकृत कर्म बहुत हो जाने पर भी इस संसार रूपी जंगल में चित्त शांत नहीं होता। अर्थात चित्त मात्र निष्काम कर्म करने पर ही शांत होता है।

अपने सजग प्रयास-पुरुषार्थ से वह जीवन के हर पक्ष को साधता है और व्यक्तित्व के हर आयाम को नित्य परिशोधित-परिष्कृत करता है। नित्य अपने शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक आयामों के प्रति जागरूकता, इनका सांगोपांग विश्लेषण एवं परिमार्जन जीवन को सफलता एवं प्रसन्नता की नई ऊँचाइयों की ओर ले जाता है। इनको लेकर किए गए नैष्ठिक प्रयास आंतरिक एवं बाह्य जीवन को उत्कर्ष के नए मुकाम की ओर ले जाते हैं, जो जीवन में सफलता के साथ आकांक्षित संतुष्टि एवं प्रसन्नता के संगम-समन्वय को सुनिश्चित करते हैं। ❑

गुरुदेव और उनकी दिव्य अनुभूतियाँ

सन् 59 के एक वर्ष वाले अज्ञातवास से जब गुरुदेव लौटे तो हम सब आश्चर्यचकित रह गए। उन दिनों हम लोगों का उनसे सीधा संपर्क भी था। आरंभ के एक महीने ही वे हिमालय के हृदय 'चेतना के ध्रुव प्रदेश' में रहे थे। इसके बाद गंगोत्तरी, उत्तरकाशी ही उनके साधना केंद्र रहे।

गंगोत्तरी में वे केवल पत्तियों पर रहे। खाद्य प्रबंध न हो सकने अथवा जो भी कारण हों, उन्हें पालक, बथुआ जैसी जंगली शाक-वनस्पतियों को उबालकर उसी पर निर्वाह करना पड़ा। आरंभ में पतले दस्त होने लगे थे। पीछे वे पत्तियाँ जैसे-तैसे हजम होने लगी थीं।

उत्तरकाशी में वे शकरकंद, गाजर जैसे शाक लेते थे। सप्ताह में एक दिन खिचड़ी आदि। दूध गंगोत्तरी में तो था ही नहीं। उत्तरकाशी में एक पाव प्रतिदिन का प्रबंध हो सका। सो कई बार में वनस्पतियों की चाय के रूप में काम आ जाता। घी, मेवे, फल आदि वे यहाँ भी कहाँ लेते थे, वहाँ तो इन चीजों को छुआ तक नहीं।

ऐसी दशा में यही आशंका की जा रही थी कि वे लौटेंगे तो बहुत दुबले होंगे। आशंका के विपरीत उनका वजन 18 पौंड बढ़ा हुआ था। चेहरे पर लालिमा झलकने लगी थी और झुर्रियाँ आधी से ज्यादा मिट गई थीं। लोकाचार किसी के अच्छे स्वास्थ्य पर आश्चर्य प्रकट करने का नहीं है। सो आरंभ में कुछ भी नहीं कहा गया, पर अवसर पाकर मैंने एक दिन इस सुधार का कारण पूछ ही लिया।

उन्होंने उत्तर दिया—"मात्र आहार पर ही शारीरिक स्वास्थ्य निर्भर नहीं रहता। जलवायु, मन:स्थिति और संयम-नियम पर ही बहुत हद तक अवलंबित है।" हिमालय का शीतप्रधान वातावरण, निरंतर गंगाजल का उपयोग, हर काम में समय की नियमित व्यवस्था, भूख से कम खाने से पाचन सही होना, चित्त का दिव्य चिंतन में निरत रहना, मानसिक विक्षोभ और उद्वेग का अवसर न आना— ये ऐसे आधार हैं, जिनका मूल्य पौष्टिक आहार से हजार गुना ज्यादा है।

तपस्वी लोग सुविधा-साधनों का, आहार का अभाव रहने पर भी दीर्घजीवी, पुष्ट और सशक्त रहते हैं, उसका कारण उपरोक्त है, जिसका महत्त्व आमतौर से नहीं समझा जाता। हिमालय पिता की गोद में जब भी वे गए अपने शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य में अद्भुत अभिवृद्धि करके ही वापस आए।

सूनेपन की हानिकारक प्रक्रिया बताते हुए वे अक्सर अपने स्वतंत्रता संग्राम के जेल जीवन की वह बात सुनाया करते, जिसमें उन्हें एक मास की कालकोठरी भुगतनी पड़ी थी, एक मास के सूनेपन ने उनके शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानसिक संतुलन को बुरी तरह बिगाड़ दिया था।

इसके विपरीत एक बार सन् 62 में तीन महीने के लिए वे हिमालय गए और सर्वथा एकाकी सघन वनप्रदेश में रहे तो आश्चर्यजनक मनोदशा लेकर आए। वे अत्यधिक प्रसन्न, प्रफुल्लित और संतुष्ट दिखाई देने लगे। आशंका उन दिनों भी यही थी कि

कहीं जेल जीवन की तरह यह तीन महीने भी उन्हें कष्टकारक सिद्ध न हों, पर उलटे जब उनकी आँखों में नई चमक देखी तो इस बार भी विचित्रता का कारण पूछना पड़ा।

उन्होंने बताया हिमालय के दिव्य वातावरण में उनके शरीर ही नहीं, मन को भी एक दिव्य स्फुरणा मिलती है।

इस बार एक नया प्रकाश मिला। पशु-पक्षी, छोटे जीव-जंतु; यहाँ तक कि वृक्ष और पौधों में भी आत्मा की चेतना की उपस्थिति प्रत्यक्ष परिलक्षित हुई। पुस्तकों में तो आत्मा के सर्वव्यापी होने की बात पढ़ते रहे थे, पर उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति इसी बार हुई।

लगता रहा मानो इस सघन वन प्रदेश में रहने वाले सभी जीवधारी मनुष्यों के समान ही हैं। बोलना और सोचना कम जानते हैं उससे क्या? अनेक तपस्वी भी तो मौन धारण किए रहते हैं और ध्यानावस्थित स्थिति में भी तो सोचना बंद हो जाता है। इस क्षेत्र के निवासियों को मौन साधक और ध्यानावस्थित समझा जाए तो क्या हर्ज है। यह विचारों में बदला-निष्ठा बना, फिर प्राय: वैसी ही अनुभूति होने लगी। ❑

गुरु शिष्य को वैराग्य की शिक्षा दे रहे थे। उन्होंने उससे कहा— ''वत्स! जीवन बड़े सागर में उभरा एक बुलबुला मात्र है। इसके सारे संबंध उतने ही क्षणभंगुर हैं, जितना यह जीवन है। जीवन का बुलबुला फूटते ही ये संबंध भी विलीन हो जाते हैं।'' शिष्य बोला—''गुरुदेव! आपकी बातें तो अच्छी लगती हैं, वीतरागी होने का मन भी करता है, परंतु मेरे परिवारवाले मुझसे प्यार करते हैं, उनसे विरक्त नहीं हुआ जाता।'' गुरु ने कहा—''तो ऐसा करते हैं कि उनके प्रेम की परीक्षा ले लेते हैं। शाम को दवा खाकर बिस्तर पर लेट जाना, इससे थोड़े समय के लिए तुम्हारी साँसें बँध जाएँगी। परिवारवाले सोचेंगे कि तुम्हारे प्राण निकल गए। मैं तब ही पहुँच जाऊँगा।'' शिष्य ने वैसा ही किया। घर में रोना-धोना मच गया। ठीक समय पर गुरु वैद्य के रूप में पहुँच गए और घरवालों से बोले—''देखो! यह लड़का ठीक हो जाएगा। इसकी एक दवा तो है, पर शर्त यह है कि इसके बदले में किसी और को मृत्यु का वरण करना होगा। जो इसे प्यार करता हो, वो इसके बदले में अपना जीवन दे देगा।'' सबका रोना शांत हो गया। सब बोले—''अब जो चला गया, सो चला गया। प्रभु को शायद यही मंजूर था।'' यह सुनते ही शिष्य उठकर खड़ा हो गया और गुरु के पैर पकड़कर बोला— ''गुरुदेव! मैं समझ गया कि संसार में कोई किसी का नहीं है, मात्र ईश्वर ही मेरे अपने हैं।'' उसे उसी क्षण वैराग्य हो गया।

भारत और इंडोनेशिया का सांस्कृतिक संबंध
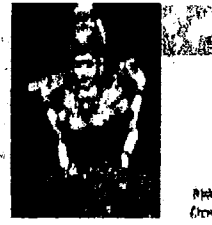
वेदों में उद्धृत मंत्र—**सा प्रथमा संस्कृति-विंश्ववारा** भारतीय संस्कृति की पुरातनता का उद्घोष करता है। इसलिए आश्चर्य नहीं कि मनुष्य को संस्कारित करने वाली देव संस्कृति का उद्भव इस पुण्यभूमि से हुआ और इसका विस्तार विश्वव्यापी रहा।

काल के थपेड़ों के बीच यह प्रभाव अवश्य सिमटता गया, लेकिन इसके अवशेष अभी भी अपनी पुख्ता उपस्थिति दर्ज करते हैं। विश्व में सबसे अधिक मुसलिम आबादी वाला देश इंडोनेशिया इसका एक जीवंत उदाहरण है।

लगभग 17 हजार छोटे-बड़े द्वीप समूह से बना यह देश, 28 करोड़ आबादी और 19 लाख वर्गकिमी क्षेत्रफल के साथ विश्व का चौथा सबसे अधिक आबादी वाला देश तथा तीसरा सबसे बड़ा लोकतंत्र है। साथ ही 87 प्रतिशत मुसलिम आबादी के साथ विश्व का सबसे बड़ा मुसलिम देश भी है।

इस सबके बावजूद इस देश के जीवन में भारतीय संस्कृति की अंतर्धारा को प्रवाहित देखा जा सकता है। इंडोनेशिया और भारत के बीच रामायणकाल से संबंध माने जाते हैं। यवद्वीप अर्थात जावा का उल्लेख भारत के महाकाव्य रामायण में मिलता है।

भगवान राम की सेना के प्रमुख सुग्रीव ने अपनी सेना को सीता माता की खोज के लिए यवद्वीप भेजा था। इसके साथ प्राचीनकाल से इंडोनेशिया और भारत के बीच समुद्री व्यापार होता रहा है। इंडोनेशियाई भाषाओं में बड़ी संख्या में संस्कृत शब्दों की उपस्थिति भारतीय प्रभाव को स्पष्ट करती है।

वस्तुतः भारत से पल्लव लिपि और संस्कृत भाषा को अपनाने के बाद इंडोनेशिया ने अपने ऐतिहासिक काल में प्रवेश किया, जो कि इंडोनेशिया के सबसे पुराने राज्यों जैसे कुताई के यूपा, तरुमानगर के तुगु और कलिंग के ऐतिहासिक अभिलेखों से प्राप्त हुए कुछ प्रारंभिक शिलालेखों से प्रमाणित होता है। इंडोनेशिया शब्द देश के स्वतंत्र गठन से बहुत पहले 18वीं शताब्दी का है। इंडोनेशिया का नाम ग्रीक भाषा का है, जो इंडो और नेसो शब्दों को जोड़कर बनाया गया है। इंडो लैटिन शब्द इंडस से बना है, जिसका अर्थ है—भारत और नेसो ग्रीक शब्द है, जिसका अर्थ है—द्वीप।

इस तरह इंडोनेशिया का अर्थ भारत के द्वीप के रूप में है, जहाँ चिरकाल तक भारतीय सभ्यता की जड़ गहराई तक जमी रही है। इन द्वीपसमूहों का इतिहास पिछले दिनों तक ईस्ट इंडीज कहा जाता रहा है। ईस्ट इंडीज अर्थात पूर्वी भारत। जिस प्रकार अब उत्तर भारत और दक्षिण भारत एक होते हुए भी उसकी भौगोलिक जानकारी के लिए उत्तर-दक्षिण का प्रयोग करते हैं, उसी तरह किसी समय विशाल भारत का पूर्वी छोर इंडोनेशिया तक फैला हुआ था। उनके मध्य में आने वाले देश भी भारत के ही अंग थे और इंडोनेशिया के भारत के साथ प्रगाढ़ संबंध थे।

इंडोनेशिया में श्रीविजय युग के दौरान कई इंडोनेशियाई लोगों ने भारत में नालंदा विश्वविद्यालय में अध्ययन किया था। पूज्य गुरुदेव के शब्दों में,

इस द्वीपसमूह की पुरातत्त्व उपलब्धियों और अर्वाचीन परंपराओं को देखने से स्पष्ट है कि वहाँ भारतीय संस्कृति की गहरी छाप है।

वहाँ के इतिहास से ही यह तथ्य सामने आता है कि किसी जमाने में यह देश भारतीय उपनिवेश रहा है। वहाँ भारतीय पहुँचे हैं, उन्होंने अपना वंश-विस्तार किया है और इस भूमि को खोजा, बसाया और विकसित किया है।

पीछे भारत से संबंध छूट जाने के कारण वहाँ पहुँचे अरबों के प्रभाव और दबाव में आकर वहाँ के निवासियों ने इसलाम धर्म स्वीकार कर लिया। फिर भी संस्कृति में भारतीयता का गहरा पुट बना ही रहा, जो अब तक विद्यमान है।

पूज्यवर के शब्दों में, ईसा से लगभग 300 वर्ष पूर्व पाटलिपुत्र का कोई राजकुमार वहाँ पहुँचा और इन द्वीपसमूहों में से कितने ही द्वीपों को उसने नए सिरे और नए ढंग से बसाया था। तब से भारतीयों का उस क्षेत्र में आना-जाना बना ही रहा। पीछे भगवान बुद्ध के शिष्यों ने वहाँ पहुँचकर बौद्ध धर्म का प्रचार किया, किंतु इससे पहले शताब्दियों तक हिंदू धर्म का ही प्रसार-विस्तार होता रहा और उस द्वीपसमूह के प्रायः सभी निवासी हिंदू धर्मावलंबी बने रहे।

धर्म से मुसलिम होते हुए भी इंडोनेशियावासियों की संस्कृति में रामायण और महाभारत के लिए श्रद्धा का गहरा पुट है। उनके नाम अभी भी रत्नदेवी, लक्ष्मी, सीता, द्रौपदी, मेघवती, कार्तिकेय, सुकर्ण, सुव्रत, सुजय आदि पाए जाते हैं।

मुसलमान होते हुए भी यहाँ इनके रामायण नाम से होटल विद्यमान हैं। इंडोनेशिया के प्रथम शिक्षामंत्री यासीन ने उस देश का विस्तृत इतिहास ताता नगरा मजहित सप्त पर्व नाम से लिखा है, जिसमें रामायण को उस देश की सांस्कृतिक गरिमा के रूप में स्वीकार किया है।

इसी तरह महाभारत इंडोनेशिया के जनमानस में विशिष्ट स्थान रखता है। महाभारत पर आधारित देवरुचि, अर्जुन-विवाह, काकविन, द्रौपदी स्वयंवर, अभिमन्यु-वध आदि कितने ही कथानक भी यहाँ की नाट्य परंपराओं में सम्मिलित हैं।

आश्चर्य नहीं कि इंडोनेशिया के अनेक नगरों के नाम अभी भी भारतीय नगरों के समान हैं, जैसे—अयोध्या, हस्तिनापुर, तक्षशिला, गांधार, विष्णुलोक, लवपुरी, नगर प्रथम आदि।

भगवान विष्णु के वाहन गरुड़ इंडोनेशिया निवासियों के श्रद्धापात्र हैं। उनके नाम से गरुड़ एयरवेज कंपनी चलती है। यहाँ के पंडान कस्बे की दुकानों के नाम अर्जुन, नकुल, लक्ष्मण आदि पर हैं। एक एक्सप्रेस गाड़ी का नाम भीम है। हनुमान, रावण, जटायु आदि के मुखौटे जहाँ-तहाँ बिकते देखे जा सकते हैं।

जोग्या कार्ता का प्राचीन शिवालय 140 फुट ऊँचा है। इसमें 16 बड़े और 240 छोटे मंदिर सम्मिलित हैं, भूचाल से ध्वंस होने पर भी जो कुछ बचा है, वह भी अत्यधिक हृदयग्राही है। रामायण अभिनयों में जोग्या के सुल्तान की पुत्रियाँ सीता और त्रिजटा का अभिनय करती हैं। इस तरह दोनों देशों के संबंध लगभग हजारों वर्ष पुराने हैं।

सन् 1927 में जावा और बाली की यात्रा के दौरान भारतीय कवि रवींद्रनाथ टैगोर, बाली के मंदिरों को देख इतने अविभूत हुए थे कि उन्होंने कहा था कि मैं जहाँ भी द्वीप पर जाता हूँ, मुझे भगवान दिखाई देते हैं। इसके 23 वर्ष बाद सन् 1950 में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने बाली को दुनिया की सुबह कहा था।

इंडोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्ण ने एक समय पं. जवाहरलाल नेहरू को एक पत्र में लिखा था— इंडोनेशिया और भारत की जनता रक्त और संस्कृति के पवित्र एवं सुदृढ़ धागों से परस्पर मजबूती के साथ बँधी है।

आश्चर्य नहीं कि सन् 1950 में भारत के वार्षिक गणतंत्र परेड में इंडोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्णो पहले मुख्य अतिथि थे।

भारत और इंडोनेशिया के बीच आधिकारिक रूप से 3 मार्च, 1951 से राजनयिक संबंध खुलते हैं। सन् 1955 में भारतीय प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और इंडोनेशियाई राष्ट्रपति सुकर्णो गुटनिरपेक्ष आंदोलन के पाँच संस्थापकों में से थे।

सन् 1950 में इंडोनेशिया के पहले राष्ट्रपति सुकर्णो ने इंडोनेशिया और भारत के लोगों से सौहार्दपूर्ण संबंधों को प्रगाढ़ करने का आवाह्न किया था, जो औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा बाधित होने से पहले दोनों देशों के बीच हजारों वर्षों से विद्यमान थे।

7 सितंबर, 1971 में इंडोनेशिया ने विश्व का सर्वप्रथम अंतरराष्ट्रीय रामायण महोत्सव आयोजित किया और जिसमें राष्ट्रसंघ का पूरा सहयोग रहा। इसमें दर्जनों देशों की भागीदारी रही। रामलीला की कितनी शैलियाँ प्रचलित हैं और उनकी अपनी-अपनी कितनी विशेषताएँ हैं, उसे देखकर आगंतुक मंत्रमुग्ध रह गए।

इस विश्व मेले में 300 कलाकारों और 20 हजार दर्शकों ने भाग लिया। आज भारत और इंडोनेशिया विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्रों में से हैं। दोनों जी-20, जी-7 देशों, गुट निरपेक्ष आंदोलन और संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देश हैं।

हाल ही में हुए एक सर्वेक्षण के अनुसार, इंडोनेशिया के अधिकांश नागरिक भारत के प्रभाव को सकारात्मक रूप से देखते हैं। दोनों देशों में कई समानताएँ हैं। मुसलिम बहुल आबादी होने के बावजूद इंडोनेशिया भारत के समान एक धर्मनिरपेक्ष देश है।

इंडोनेशिया के लोग रामायण, महाभारत के प्रति श्रद्धाभाव रखते हैं और योगेश्वर श्रीकृष्ण, धनुर्धर अर्जुन तथा वैदिक साहित्य में वर्णित विभूतियों के प्रति श्रद्धा रखते हैं। इंडोनेशिया का द्वीप बाली तो हिंदू बहुल है, जहाँ के निवासी भारत से उस देश में आकर बसे लोगों की संतानें नहीं हैं, अपितु वहाँ के मूल निवासी हैं, जिन्होंने सैकड़ों वर्ष पहले हिंदू या बौद्ध धर्म अपनाया।

दोनों देशों के बीच हजारों वर्षों से चले आ रहे सांस्कृतिक संबंधों का एक प्रमाण यहाँ की राजभाषा है, जो मलय और भारतीय भाषाओं के मिश्रण से उत्पन्न मानी जाती है। यहाँ की मुख्य मुद्रा भी रुपिया है, जो भारत के रुपये के अनुरूप है। उनकी भाषा को भाषा इंडोनेशिया कहा जाता है। स्वर्ग, नरक जैसे उनके कई शब्द भारत से मिलते हैं।

इंडोनेशिया के पारिवारिक और सामुदायिक जीवन के अनेक परंपरागत रीति-रिवाजों का प्रेरणास्त्रोत सनातन धर्म ही है। बाली में हिंदू मंदिरों की संख्या लगभग 5-6 हजार बताई जाती है। यहाँ की महिलाओं में धर्म के प्रति आस्था का भाव भारत जैसा ही है।

आज भी दोनों देशों के सुदृढ़ राजनयिक संबंधों के साथ यहाँ के सांस्कृतिक संबंध सूत्र प्रगाढ़ हैं। निस्संदेह सांस्कृतिक टकराहट से भरे इस युग में धर्म की भिन्नता के बावजूद इंडोनेशिया और भारत की सांस्कृतिक एकता के संबंध सूत्र विश्वशांति एवं सौहार्द की दिशा में मानक एवं प्रेरक हैं। ❑

इक्कीसवीं सदी नारीप्रधान होगी। उसकी भूमिका हर क्षेत्र में नर से कहीं अधिक बढ़-चढ़कर होगी। अतएव प्रयत्न यह होना चाहिए कि उसे शिक्षा, स्वास्थ्य और तेजस्विता की दृष्टि से उपयुक्त स्तर तक पहुँचाया जाए। —*परमपूज्य गुरुदेव*

चेतना की शिखर यात्रा - 264

सूक्ष्म में प्रवेश

विगत अंक में आपने पढ़ा कि अपनी मार्गदर्शक सत्ता द्वारा दिए गए संकेत के आधार पर पूज्य गुरुदेव ने क्षेत्रों में प्रवास कार्यक्रमों एवं भेंट के क्रम पर थोड़ी रोक लगाई थी व अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों को करने में जुट गए थे। अपने पूज्यवर के आगमन की आस सँजोए क्षेत्र के कार्यकर्त्तागणों का भावुक मन पूज्य गुरुदेव के इस क्रम में हुए परिवर्तन को स्वीकारने में समर्थ न हुआ। परिजनों में कुछ तो अनुनय लेकर शांतिकुंज आ पहुँचे। वर्तमान परिस्थितियों की विभीषिका के समुचित निराकरण के कार्यों को प्राथमिकता दिया जाना अधिक महत्त्वपूर्ण था और यही कारण था कि पूज्य गुरुदेव ने अब भेंट-परामर्श के क्रम को लगभग समाप्त कर दिया। आगंतुकों की मनोदशा से भली प्रकार परिचित पूज्य गुरुदेव ने प्रेम से उन्हें अपने अतिमहत्त्वपूर्ण दायित्वों से अवगत कराया। आश्वासनस्वरूप उन्होंने परिजनों से यह भी कहा कि आने वाले समय में वंदनीया माताजी के माध्यम से समस्त शुभ संकल्प निश्चित रूप से सफलतापूर्वक पूर्ण होंगे। आइए पढ़ते हैं इससे आगे का विवरण ...

शताब्दी अंत के संकट

दो साल पहले सन् 1981 में अंतरराष्ट्रीय जगत् में स्वास्थ्य विज्ञानियों ने एक नई बीमारी की सूचना दी थी। 'एड्स' नामक इस संक्रामक बीमारी के बारे में कहा गया था कि अकेला यही रोग कुछ ही वर्षों में पूरी मानव जाति को नष्ट कर सकता है। रोग का कोई उपचार आज तक नहीं ढूँढ़ा जा सका है। सिर्फ परहेज ही उससे बचने का उपाय है।

एक बार इसकी चपेट में आ जाए तो फिर परहेज भी कोई काम नहीं देगा। इस बीमारी पर अब तक कितने ही शोध प्रयोग किए गए, लेकिन कोई निवारक उपचार नहीं मिला। करीब चार साल पहले एक अंतरिक्ष यान अपनी कक्षा से भटक गया, वह पृथ्वी की ओर दौड़ने लगा। उसकी गति और संहारक क्षमता के आधार पर आशंका जताई गई कि यदि वह पृथ्वी के किसी भू-भाग पर गिरा तो खंडप्रलय जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

ध्रुव प्रदेशों में गिरा तो चारों ओर विनाश-ही-विनाश नाच उठेगा। जरूरी था कि वह समुद्र में ऐसी जगह गिरे, जहाँ का जलस्तर अत्यंत गहरा हो। उस गहराई में वरुण देव की शामक शक्ति ही उसे शांत कर सकती है।

ग्यारह जुलाई की रात तक इस आकाशीय प्रयोगशाला ने लाखों लोगों का चैन उड़ा दिया। करीब छह महीने में पृथ्वी के लगभग 35000 चक्कर लगाकर स्काईलैब जब आस्ट्रेलिया के पास समुद्र में गिरा तो मनुष्य जाति ने चैन की साँस ली। स्काईलैब जिस गति और दिशा-धारा से घूमता-दौड़ता हुआ पृथ्वी की ओर आ रहा था, उससे लगता था कि यह ठोस जमीन पर ही गिरेगा।

समुद्र में गिरने की संभावना पाँच प्रतिशत बताई जा रही थी। यह पाँच प्रतिशत संभावना कैसे सौ प्रतिशत में बदल गई? इस प्रश्न का हल ढूँढ़ते हुए वैज्ञानिक अद्‌भुत संयोग और अध्यात्मविद् ईश्वरीय अनुग्रह अथवा किसी विराट आध्यात्मिक प्रयोग की परिणति बताते हैं। पिछले दस वर्षों में दुनिया ने इतने बड़े उतार-चढ़ाव देखे कि इतिहासकारों के मुताबिक पिछले दस हजार वर्षों में नहीं देखे होंगे।

संयुक्त राष्ट्र की संस्कृति और इतिहास परिषद् द्वारा जारी विवरणों के मुताबिक सन् 1971 से 1980 के बीच दुनिया भर में अट्‌ठाईस-सौ छोटे-बड़े युद्ध लड़े गए। भारत, पाक, वियतनाम (दक्षिण), ईरान-इराक, इजराइल, मिस्र के बड़े युद्ध भी इनमें शामिल हैं, जिनमें हजारों लोगों की जानें गईं। परखनली शिशु और अंतरराष्ट्रीय आदान-प्रदान के अलावा अंतरिक्ष यानों के प्रक्षेपण जैसी वैज्ञानिक सफलताएँ छोड़ दें तो मनुष्य जाति ने ऐसा कुछ भी हासिल नहीं किया, जो उसके सभ्य एवं संस्कारित तथा मेधावी होते जाने को सिद्ध कर सके।

इस अवधि में शिक्षा, सुविधा और संपन्नता का एक नखलिस्तान जरूर उभरता दिखाई दिया किंतु दुनिया की अस्सी प्रतिशत से ज्यादा आबादी भूख और गरीबी के निम्नतम स्तर पर ही जीती दिखाई दी। इस बीच इकोरस जैसा क्षुद्र ग्रह सौर कलंक और आकाशीय उत्पात भी मनुष्य जाति को भयभीत करने में जुटे हुए थे।

पूज्य गुरुदेव ने सन् 1981 के बाद भारत के महाशक्ति बनने का आश्वासन दिया। सन् 1982 के आस-पास अपनी बाहरी गतिविधियों को समेटना शुरू किया तो परिजनों से कहा कि नया युग आरंभ होने से पहले कुछ कषाय-कल्मष भी ऊपर आएँगे। उनसे चिंतित नहीं होना है। समुद्रमंथन में भी तो पहले कूड़ा-करकट, अनीति-अमंगल और गरल विष निकला था। अमृत तो उस सबके बाद की निष्पत्ति है।

"भगवान अपनी दुनिया को हेय स्थिति में पड़े नहीं रहने देना चाहते। वे इसे उबारेंगे और उबारेंगे इसलिए कि भारत का उत्थान आवश्यक है। उसके बिना दुनिया भी नहीं उठेगी।"—गुरुदेव ने उन दिनों मुलाकात के लिए आई एक संत विभूति से कहा था। इस पर उन संत ने कहा—"भगवान भारत को क्यों उठाना चाहते हैं गुरुदेव? क्या उन्हें भारत से विशेष स्नेह है?"

"विशेष स्नेह नहीं।"—गुरुदेव ने कहा। "भगवान प्रत्येक कल्प में एक देश को चुनते हैं। उसे सजाते-सँवारते और वहाँ प्रकाश उत्पन्न करते हैं। जब कभी वे मनुष्य को उसके किए का दंड देना चाहते हैं तो पहले चुने हुए देश को ही श्री और संपदा से हीन करते हैं। उस देश को कुछ समय के लिए दबा देते हैं।

"सन् 1971 से 1981 के बीच दुनिया में जो कुछ हुआ अब उसका उलटा चक्र घूमना है। प्रकृति का चक्र अब लोम गति से घूमेगा और आने वाले बीस वर्षों में (सन् 2000 तक) शुभ चिह्न दिखने लगेंगे। फिर वर्ष 2020 तक सुखद परिणाम आने लगेंगे। मनुष्य अपने वर्तमान और भविष्य के प्रति आश्वस्त दिखाई देगा।"

उन्हीं संत से गुरुदेव ने अगले अन्य संदर्भ में कहा कि गायत्री परिवार के सदस्यों को इस तरह का आश्वासन और निर्देश पहले कई बार दिया गया है। सन् 1983 की रामनवमी के बाद गुरुदेव ने गायत्री नगर में आना-जाना भी कम कर दिया। वहाँ जाने पर भी परिजन घेर लेते थे।

नगर के मुख्य द्वार पर बनी छतरियों का काम पूरा हो गया था। अभी तक परिजन सोच रहे थे कि उन्हें क्यों बनवाया जा रहा है? क्या उपयोग होगा?

शून्य और निराकार की प्रतीक हैं या यहाँ से कोई प्रेरणा-प्रवाह उत्पन्न होगा।

रामनवमी पर उन्होंने मिलना-जुलना लगभग नब्बे प्रतिशत कम कर दिया। उसी समय माताजी के माध्यम से संदेश पहुँचाया। गुरुदेव ने कहा—"शरीर छोड़ने के बाद भी वे यहीं रहेंगे। उनके पार्थिव अवशेष परिसर से बाहर नहीं जाएँगे। शरीर जिन पंचतत्त्वों से बना है, वे तत्त्व बदले हुए रूप में इसी तीर्थ में निवास करेंगे।

"उनके जाने के पाँच वर्ष बाद माताजी को भी इहलीला का संवरण कर लेना है और वे भी अपने पार्थिव अवशेषों सहित यहीं विद्यमान रहेंगी।" संदेश सुनने के बाद परिजन व्यथित तो हुए, लेकिन मिलना-जुलना रुक जाने पर गुरुदेव की उपस्थिति और सघन अनुभव होने लगी।

प्रतिदिन प्रणाम का क्रम ही तो बंद हुआ था। गुरुदेव जब मिलना चाहते या अपनी आवश्यकता जोर मारती तो बुलावा आ जाता, लेकिन यह सक्रिय और जीवंत होने का दौर था। गुरुदेव ने नैष्ठिक साधकों को उच्चस्तरीय साधनाएँ सिखाना आरंभ किया।

प्रत्यक्ष उनसे भेंट नहीं होती थी, लेकिन साधना के समय कई परिजनों को लगता कि वे सामने बैठे ध्यान करा रहे हैं। अपने उच्चार का अनुकरण करने के लिए कहते हुए जप करा रहे हैं और कभी-कभार तो पलकों को भी ठीक से खोलना और बंद करना सिखा रहे हैं। सामने बैठे किसी शिक्षक या इंस्ट्रक्टर की तरह भी उस समय गुरुदेव के सान्निध्य की अनुभूति होती।

प्रतीति की भावभूमि

प्रतीति भाव जगत् में होती है या प्रत्यक्ष? गुरुदेव के पास किसी ने लिखकर भेजा था। जैसा कि कभी-कभार होता था गुरुदेव उस समय गायत्री नगर में अपने परिजनों से कुछ कहने के लिए आए थे। प्रवचन देने का छिटपुट सिलसिला तब भी किसी रूप में जारी था, किंतु इस बार गुरुदेव ने मंच पर आने का निश्चय किया।

उस संदर्भ को स्पष्ट करने से पहले गुरुदेव का उत्तर बता दें। लिखकर भेजे गये जवाब में गुरुदेव ने प्रवचन में कहा—"यह प्रतीति करने वाले पर निर्भर है। भावशरीर के तल पर जाग्रत और चैतन्य साधक ने पुकारा हो तो प्रतीति प्रत्यक्ष हो सकती है। ठीक उसी तरह जैसे हम और आप आमने-सामने बैठकर मिल रहे हैं, लेकिन भावशरीर अभी स्वाभाविक स्थिति में है; प्रत्यक्ष और सूक्ष्म का अंतर बना हुआ है तो प्रतीति हृदयचक्र में ही होगी। स्वप्न की भाँति या गंध, रस और रूप की भाँति। उस स्थिति में आप किसी को छूना चाहें तो कठिन है।"

जल प्लावन के उदाहरण से और स्पष्ट करते हुए गुरुदेव ने समझाया कि मनु ने उस समय सृष्टि बीजों को नौका में रखकर सुमेरु पर्वत पर आसन जमा लिया। नौका बँधी हुई थी। चारों ओर जल-ही-जल, लेकिन जल से नौका बाँधी तो नहीं जा सकती। इसलिए मनु ने सुमेरु का आश्रय लिया, वह हिमगिरि के रूप में विद्यमान था। हिम और जल में सघनता और तरलता का ही अंतर है। हिम जल का ठोस रूप है और जल उसी हिम का तरल रूप। दोनों तत्त्वों या रूपों में से किसे सही कहें? बरफ को या पानी को?

यह प्रसंग पूरा करते हुए गुरुदेव ने कहा—"आपका मन कहे तो इस बारीकी में जाइए अथवा जैसा अनुभव होता है, अपने लिए वही सही मानें। ध्यान रहे सिर्फ अपने ही लिए। उसे किसी दूसरे को परखने के लिए आधार न बनाएँ। जो जिस आत्मिक और आंतरिक स्थिति में जी रहा है, उसे वहीं से आगे बढ़ने दें। उसकी यात्रा में अपने अनुभवों का

रोड़ा न अटकाएँ।'' गुरुदेव ने तो उल्लेख नहीं किया, लेकिन उस उत्तर को समाचार और लेख का स्वरूप देते हुए पत्र-पत्रिकाओं में भगवद्गीता का हवाला भी दिया। अर्जुन को उपदेश देते हुए वहाँ श्रीकृष्ण कहते हैं कि मुझे जो जिस रूप में भजते हैं, उन्हें उसी रूप में प्राप्त होता हूँ। ज्ञानी जनों को चाहिए कि कम समझदार और कम शिक्षित जनों को अपने अनुभव या निष्कर्षों से भ्रमित न करें।

अपवादों का क्षरण

प्रसंगवश यह उल्लेख आवश्यक होगा कि मिलना-जुलना कम कर देने के कारण गुरुदेव के संबंध में कुछ अफवाहें फैलने लगी थीं। लोग यों अत्यंत आवश्यक होने पर उनसे मिलते ही थे, पर यह समय सीमित कर दिया गया था। साल-छह महीने पहले गुरुदेव सैकड़ों लोगों से एक साथ-एक ही बार में मिल लेते थे। उनसे किसी भी वक्त मिला जा सकता था। अब उन्होंने डेढ़-दो घंटे का समय ही नियत कर दिया था और वह भी चुने हुए व्यक्तियों के लिए ही। उन व्यक्तियों का चयन उनकी आवश्यकता, पात्रता और अभीप्सा के आधार पर किया जाता था।

इस बदलाव का लाभ उठाने के लिए किसी समय गुरुदेव के निकट रहे लोगों ने अपने आप को उनका प्रतिनिधि या उत्तराधिकारी बताना शुरू कर दिया। गुरुदेव ने हजारों बार स्पष्ट किया है कि वे कोई परंपरा नहीं शुरू कर रहे हैं। गायत्री परिवार के सभी परिजन और भारतीय धर्म-संस्कृति के अनुयायी, यहाँ तक कि धर्म विश्वास की अन्य धारा के व्यक्ति भी उन्हीं के अभिन्न रूप हैं। जहाँ तक उनकी आध्यात्मिक विरासत या उत्तराधिकार का सवाल है मठों और दूसरे आश्रमों की तरह किसी भी व्यक्ति को नहीं सौंप रहे हैं। जो भी है महाकाल की सृजनसेना का समान भागीदार है, ज्ञानयज्ञ की लाल मशाल है।

पूज्य गुरुदेव की इन दो-टूक बातों के बावजूद कतिपय लोगों ने अपने आप को उनका एकमात्र उत्तराधिकारी बताना शुरू किया। भारत में तो ऐसे तत्त्वों की दाल कम ही गली। पश्चिमी देशों में वे कुछ कामयाब होने लगे। कुछ धर्मध्वजियों ने तो अपनी वल्दियत बदलकर भी काम शुरू कर दिया। धर्म के नाम पर लोगों को ठगने वाले ऐसे धर्मध्वजियों पर उनकी अपनी आत्मा के सिवा कोई और रोक नहीं लगा सकता था।

उन लोगों ने गुरुदेव के संबंध में अशुभ और अप्रिय अफवाहें फैलाना शुरू किया तो वहीं के नैष्ठिक साधकों ने गुरुदेव से सामने आने का अनुरोध किया। गुरुदेव हमेशा की तरह प्रवचन मंच पर आए और परिचित शैली तथा स्वर में परिजनों को संबोधित करने लगे।

यह शुरू करते ही किसी की आलोचना या खंडन किए बगैर ही अपवादों का अपने आप शमन हो गया। जब कहीं, कोई विपर्यय नहीं रहा तो गुरुदेव की एकांत साधना पहले की तरह फिर चलने लगी। परिवार और उसमें सम्मिलित होकर युग देवता की साधना कर रहे साधकों के मन में विक्षोभ दूर हुआ। फिर इसके बाद गुरुदेव ने उन तत्त्वों के लिए क्षमादान की घोषणा कर दी, जो उनके एकमात्र प्रतिनिधि होने का दावा कर रहे थे।

प्रतिभा और अमानत

मिलना-जुलना सीमित कर देने के बाद गायत्री परिवार के सदस्यों की संख्या बेतहाशा बढ़ने लगी। पर्व-त्योहारों पर यहाँ आने और प्रणाम करने के लिए कतार लगाने वालों की संख्या बीस-पच्चीस हजार तक पहुँच जाती। सभी गुरुदेव को प्रणाम करने, उनका चरणस्पर्श करने के लिए उत्सुक, लेकिन अपनी मार्गदर्शक सत्ता के निर्देश पर यह क्रम रुका तो रुक ही गया। प्रणाम, दर्शन के लिए

उत्सुक जनों को दूर ही रहने और बहुत हुआ तो मन में अनुभव कर लेने का निर्देश था।

गायत्री परिवार के अथवा बाहर के कुछ ऐसे महानुभाव भी थे, जिन्हें गुरुदेव की अनुमति मिल जाती। ऐसे आगंतुकों से गुरुदेव बातचीत कर लेते। उन्हीं दिनों इंडियन एक्सप्रेस पत्र समूह के एक वरिष्ठ पत्रकार गुरुदेव से मिले। उन्होंने राजनीति, अर्थ, समाज आदि विषयों पर लंबी बातचीत की। गुरुदेव ने यही कहा कि मेरी राय में प्रतिभाओं को भगवान का न्यासी बनकर काम करना चाहिए। ईश्वर ने उन्हें यह संपत्ति सौंपी है।

वे दी गई प्रतिभा के मालिक नहीं हैं, उसे भगवान के काम में उसकी विश्व-वसुंधरा को सुंदर बनाने के लिए इसका उपयोग करें। अगर अपनी सुख-सुविधाओं के लिए अपनी प्रतिभा को काम में लाते हैं तो 'अमानत में खयानत' के दोषी बनते हैं। उन पत्रकार ने कहा—"मैं आपके आदेश को जीवन में उतारने की कोशिश करूँगा गुरुदेव।"

उन्हें बीच में ही रोकते हुए गुरुदेव ने कहा—"आदेश नहीं, निवेदन। इस निवेदन को औरों तक भी पहुँचाइएगा।" वरिष्ठ बुद्धिजीवी ने कहा—"आप इस बात के लिए निवेदन शब्द चुन रहे हैं, यह आपका बड़प्पन है। मैं तो इसे आदेश ही मानता हूँ।" बातचीत का समय पूरा होने लगा तो उन पत्रकार ने स्वयं ही उठने का उपक्रम किया। गुरुदेव ने कहा—"बैठिए-बैठिए।"

"आपका एक-एक क्षण महत्त्वपूर्ण है।" वे कुछ रुके और बोले—"मैंने अब से करीब चालीस साल पहले आपको देवास जिले के एक गाँव में यज्ञ कराते हुए देखा था। तब आपके सामने पच्चीस तीस लोगों का समूह था। आज आपका यश चारों दिशाओं में फैल रहा है। पच्चीस-तीस हजार आदमी किसी भी पर्व-त्योहार पर आपको प्रणाम करने आ जाते हैं। आप अपने इस यश की एक झलक भी देखना नहीं चाहते। धन्य है गुरुदेव।"

जिन दिनों गुरुदेव ने मिलना-जुलना अत्यंत सीमित कर दिया था और उनके दर्शन के लिए आने वालों की संख्या नित्य-निरंतर बढ़ रही थी, उन दिनों गुरुदेव ने अपनों के नाम एक पत्र लिखा। हजारों लोगों को संबोधित इस पत्र में लिखा था—"चलते समय काफिला इतना लंबा, किंतु मंजिल पर पहुँचने का समय आने तक साथी उँगलियों पर गिने जा सकने योग्य ही। इसे असफलता कहा जाए? दुर्भाग्य? विधि की विडंबना या उस मिट्टी को दोष दें, जिससे यात्रियों की कतार तो गढ़ी थी, पर संरचना इतनी अनगढ़ कि दो कदम चलते-चलते यायावरों की तरह भटकी और मृगतृष्णा की आतुरता में विभ्रांत होकर कहीं-से-कहीं चली गई।"

एक और संदेश उसी पत्र के साथ लिखा, उसमें गुरुदेव ने कहा—"समूचा समाज और उसका मान्य प्रचलन दुष्टता और भ्रष्टता से भरा है। उसे सहन करते रहने की अभ्यस्त कुसंस्कारिता तभी उखड़ती है, जब उसके विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा कर लिया जाए। मनोरथ सफल नहीं होने की भविष्यवाणी कोई भी व्यवहार-बुद्धिवाला आदमी छाती ठोककर कर सकता है, किंतु वास्तविकता यही है कि साहसी लोगों ने आदर्शवादी निर्णय अपनी अंत:प्रेरणा से किए हैं। ईमान और भगवान का परामर्श लेने के अतिरिक्त किसी तीसरे से पूछताछ करने की आवश्यकता पड़ती ही नहीं।"

ये पंक्तियाँ अखण्ड ज्योति के पन्नों पर भी छपी थीं। जितने लोगों ने इन्हें पढ़ा, उनसे ज्यादा लोगों ने अपने अंत:करण में उसकी गूँज सुनी। उनमें से कितनों ने ही यहाँ आने का मन बनाया और जैसाकि श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता, 7/3 में कहा है—"जितने लोग मन बनाते हैं, उनमें से गिने-चुने ही

पग बढ़ा पाते हैं, पग बढ़ाने वालों में कोई विरले ही अपने चुनाव पर स्थिर रहते और आगे बढ़ते हैं। उन आगे बढ़ने वालों में भी कोई ही अपने लक्ष्य तक पहुँचता है।''

पूज्य गुरुदेव के सपनों को साकार करने, उन्हें जीने और जीवन में उतारने वाले लोग कितने हैं यह तो वही जानें। यहाँ शांतिकुंज गायत्री नगर और गाँव-गाँव में फैले गुरुदेव के सपनों की छोटी-सी झलक पाना जरूरी है। यह झाँकी अप्रैल, 1984 के आखिरी सप्ताह से पहले की है। आश्रम को बने तब चौदह वर्ष हुए थे। इस अवधि में थोड़े समय के लिए आने और प्रशिक्षण प्राप्तकर लौट जाने वालों की संख्या बीस हजार के ऊपर थी। अपने आप को इस संस्था का अंग मानकर जीवनदानी की तरह स्थायी निवास का संकल्प लेने वालों की संख्या पाँच सौ से ज्यादा थी।

भारतभूमि के छह सौ में से चार सौ पचास जिलों और तीन लाख गाँवों में युगशक्ति की उपासना करने वाले दो करोड़ साधक। भारत के बाहर देशों में 74 जाग्रति केंद्र और निरंतर प्रवास करती, युग साधना का संदेश पहुँचाती पच्चीस जीप मंडलियाँ। इस विस्तार के लिए हिमालय के प्रवेश द्वार पर तपस्यारत एक ऋषि आत्मा। श्वेत वस्त्रों से भूषित, अपने कक्ष और बरामदे में चहलकदमी करती हुई, लाखों हृदयों को जगाती, उनमें आलोक बिखेरती उस आत्मा ने संवत् दो हजार इकतालीस का पहला सूर्योदय होने से पहले ही वह खिड़की भी बंद कर दी, जहाँ से बाहर की झलक मिलती थी। ❑

स्कॉटलैंड के प्रसिद्ध व्यापारी रॉबर्ट इन्निस को एक बार व्यापार में इतना घाटा हुआ कि उनकी सारी जमा-पूँजी बिक गई। अन्य कोई आय का साधन न होने पर घर में दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में भी दिक्कत पड़ने लगी। रॉबर्ट के मित्रों-संबंधियों को लगा कि इस विषमता की घड़ी में वह कहीं अपना आत्मविश्वास सदा के लिए न खो बैठे, परंतु रॉबर्ट किसी और मिट्टी का बना था। उसने बिना किसी संकोच के एक साधारण फर्म में पहरेदार की नौकरी ले ली। उस फर्म का मालिक रॉबर्ट को नहीं पहचानता था। एक दिन उसका एक मित्र उससे मिलने आया तो वह फर्म के मालिक से बोला—''तुम बड़े भाग्यशाली हो, जो रॉबर्ट इन्निस जैसा अमीर आदमी तुम्हारे यहाँ पर छोटी-सी नौकरी कर रहा है।'' फर्म के मालिक को तो भान भी न था कि वह उसके यहाँ पहरेदार के पद पर है तो उसने रॉबर्ट इन्निस से क्षमा माँगनी चाही। इस पर रॉबर्ट ने कहा—''आप मुझसे क्षमा न माँगें। आपका तो मैं शुक्रगुजार हूँ कि आपने मुझे नौकरी पर रखा। बाकी सब तो मुझे बड़ा आदमी समझकर कोई काम देने को तैयार ही न थे। रही बात छोटे काम की तो दुनिया में कोई कार्य छोटा नहीं होता। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं पुनः परिश्रम करके उन्हीं ऊँचाइयों पर पहुँच जाऊँगा।'' फर्म का मालिक इन्निस की श्रमशीलता और आत्मविश्वास से प्रभावित हुए बिना न रह सका। उसने इन्निस को अवसर देने का निर्णय किया। रॉबर्ट इन्निस ने भी अपना कहा सत्य कर दिखाया और पुनः सफलता की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए उसी ऊँचाई को प्राप्त किया। कालांतर में उन्हें 'सर' की उपाधि से सम्मानित किया गया।

संभावनाएँ जगाएँ, सृष्टि सुंदर बनाएँ
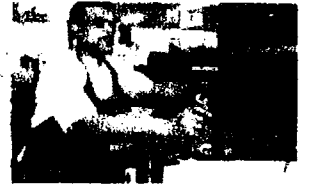
भगवान ने मनुष्य की योनि, जिसमें मनुष्य का शरीर ही नहीं, वरन मन, बुद्धि, भावनाएँ ये सभी सम्मिलित हैं—इनको एक विशेष उत्साह और अभिप्राय के साथ बनाया है। जितना परिश्रम, जितनी योजना विधाता ने इनसान को गढ़ने में लगाए हैं—ऐसा प्रतीत होता है कि उतना परिश्रम भगवान ने अन्य किसी के साथ नहीं किया।

शरीर, मन, बुद्धि से लेकर अंत:करण के स्थान में भगवान ने निश्चित रूप से इनसान को एक विशेषता, मौलिकता और गुण देकर के भेजा है। इसे ऐसे भी कह सकते हैं कि यदि स्रष्टा को अपनी सृष्टि चलाने में किसी प्राणी के सहयोग की आवश्यकता आन पड़े तो उसे मनुष्य के अतिरिक्त और कोई प्राणी सम्यक रीति से कर पाने में सक्षम नहीं है।

उन्होंने इनसान के भीतर वो सारी शक्तियाँ और विभूतियाँ सजाकर के रख दी हैं, जो स्वयं परमेश्वर के भीतर थीं और इसीलिए इनसान को भगवान का अंश कहकर पुकारा जाता है। इनसान के भीतर वो ही विभूतियाँ हैं, वो ही शक्तियाँ हैं जो भगवान के भीतर हैं या हो सकती हैं। एक जैसी शक्तियाँ, एक जैसी विशेषताएँ, दोनों के ही भीतर देखने को मिल जाती हैं।

शक्तियों की दृष्टि से देखें तो हम अन्य प्राणियों की तुलना में ज्यादा शक्तिशाली हैं, ज्यादा सामर्थ्यवान हैं। संभव है कि शारीरिक बल की दृष्टि से हम हाथी, शेर, गैंडे इत्यादि से कमतर सिद्ध हों, परंतु तब भी क्या यह सत्य नहीं कि ये ही इनसान हाथी पर महावत बनकर, शेर पर रिंग मास्टर बनकर सवारी करता नजर आता है।

ऐसा इसलिए कि बौद्धिक दृष्टि से, आत्मिक दृष्टि से जो शक्ति इनसान के पास है, वो दूसरों को नसीब नहीं है। इसीलिए जहाँ हम शारीरिक दृष्टि से कम पड़ते हैं तो वहाँ-वहाँ उन दिक्कतों से पार पाने के लिए हमने दूसरे मार्ग खोज लिए हैं।

जैसे हम एक चीते से तेज नहीं दौड़ सकते हैं, पर हमारी बनाई कार दौड़ सकती है। हम हाथी से ज्यादा वजन नहीं उठा सकते, पर हमारी बनाई क्रेन तो उठा सकती है। हम मछली की तरह डुबकी नहीं लगा सकते, पर हमारी बनाई पनडुब्बी लगा सकती है। हम चिड़िया की तरह उड़ नहीं सकते, पर हमारा बनाया हवाई जहाज उड़ सकता है।

कहने का अर्थ मात्र इतना है कि ईश्वर ने इनसान को ऐसी बौद्धिक क्षमता देकर भेजा है कि जिन-जिन क्षेत्रों में हम दूसरे प्राणियों से पिछड़ते दिखे, उन-उन क्षेत्रों में हमने शक्ति के या तो दूसरे स्रोत ढूँढ़ लिए या अन्य माध्यम ढूँढ़ लिए। इसके अतिरिक्त शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक ही नहीं; इनसान के पास आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग भी खुले हैं।

अनेक महामानवों का जीवन इस सत्य का प्रमाण है कि यदि मनुष्य अपने भीतर की दिव्य संभावना को जाग्रत करना जान जाता है तो वो ऋषि, मुनि, सिद्ध, संत, महात्मा बनता दिखाई पड़ता है और उन संभावनाओं को साकार करता दिखाई पड़ता है, जो इनसानी गुणों की अंतिम पराकाष्ठा है। इतनी सारी महान संभावनाओं के होते हुए भी कई बार आश्चर्य होता है, जब मनुष्य को अत्यंत तुच्छ, निकृष्ट जीवन जीते देखा जाता है।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel

Click here to subscribe Rishi Chintan Youtube Channel

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel के वीडियो युग निर्माण मिशन के लिए समर्पित है! हमारा एकमात्र उद्देश्य परम पूज्य गुरुदेव के विचारों को जन-जन तक पहुंचाने का है।

आप इन वीडियो को डाउनलोड करके मिशन की गरिमा के अनुरूप प्रयोग कर सकते हैं।

आप भी हमारे साथ जुड़ कर इस विचार क्रांति योजना में सहभागी अवश्य बनें।

धन्यवाद

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel को Subscribe करने के लिए क्लिक कीजिये और Bell 🔔 बटन को जरूर दबाएं ताकि आप को नोटिफिकेशन मिलते रहे।

All World Gayatri Pariwar Official Social Media Platform

Shantikunj WhatsApp:- शांतिकुंज की गतिविधियों से जुड़ने के लिए **8439014110** पर अपना नाम लिख कर **WhatsApp** करें

Official Facebook Page:-

https://www.facebook.com/awgpofficial

https://www.facebook.com/ShantikunjRishiChintan

https://www.facebook.com/awgplive

Official Twitter:-

https://twitter.com/awgpofficial

https://twitter.com/DrChinmayP

Official Instagram:-

https://www.instagram.com/awgpofficial

https://www.instagram.com/shantikunjrishichintan

कई लोग शारीरिक समस्याओं के कारण जीवन में रुके-ठहरे नजर आते हैं तो कई लोग मानसिक उलझनों के शिकार हो जाते हैं। कुछ सामाजिक समस्याओं से परेशान हैं तो कइयों को भावनात्मक आघात निराश करते नजर आते हैं। यदि ऐसी परेशानियाँ हममें से किसी की प्रगति को बाधा पहुँचाती दिखें तो हमें महापुरुषों के जीवन की ओर दृष्टि उठा के देखने की जरूरत है।

जो शारीरिक बीमारियों से कभी परेशान हों तो वो राणा सांगा के जीवनवृत्त को देखें, हरिसिंह नलवा की जिंदगी देखें, अष्टावक्र की जिंदगी देखें और यदि कभी मानसिक दिक्कतें हमें रोकने की कोशिश करें तो हम देखें कि क्या ध्रुव, हरिश्चंद्र, गुरुगोविंद सिंह को भावनात्मक प्रतिघातों को सहन नहीं करना पड़ा था?

जो सामाजिक विडंबना की राह पर चल पड़े हैं वे ये सोचें कि हमारी समस्याएँ कितनी भी बड़ी हों, पर सुदामा से ज्यादा, राणा प्रताप से ज्यादा, पूज्य गुरुदेव से ज्यादा नहीं हैं।

सत्य यही है कि हममें से अनेकों के जीवन में कठिनाइयाँ इतनी ज्यादा या बड़ी नहीं होतीं, पर हमें उनको बड़ा करके आँकने की आदत पड़ जाती है।

हम सोचें कि हमारे पास जो संभावनाएँ हैं, जो ताकतें हैं, उनका अंत नहीं है, पर हम अपने कर्त्तव्य को और भगवान को दिए अपने वचन को विस्मृत करके बैठ गए हैं। कर्त्तव्य यह है हमारा कि हम भगवान की बनाई इस सृष्टि के निगरानीकर्त्ता हैं, इसको सुव्यवस्थित, सुंदर बनाए रखना कर्त्तव्य है हमारा।

यह स्मरण रखते हुए भी तृष्णाएँ-कामनाएँ मनुष्य की गति को रोककर के बैठ जाती हैं। आज के इस चुनौतीपूर्ण समय में हमें, स्वयं के भीतर निहित उसी संभावना को स्मरण करने की और उसी को जाग्रत करने की आवश्यकता है। वो दिव्य संभावनाएँ जाग्रत होती हैं तो मनुष्य महानता के शिखर तक चढ़ता चला जाता है और उसकी गति को रोकने वाला कोई नहीं होता। ❑

राजा शत्रुदमन का पुत्र अरिदमन अत्यंत अहंकारी था। उसमें करुणा, उदारता, सेवा, दया, सहानुभूति जैसे गुणों का सर्वथा अभाव था। राजा भी उसके स्वभाव से परिचित थे। अतः उन्होंने उसे एक सिद्ध महात्मा के पास स्वभाव-परिवर्तन के उद्देश्य से भेज दिया। एक दिन महात्मा ने अरिदमन से एक वृक्ष की पत्तियाँ तोड़कर लाने को कहा। साथ ही यह भी आदेश दिया कि यदि पत्तियाँ कड़ुई हों तो उन्हें न लाए।

काफी समय लगाकर अरिदमन वापस लौटा और महात्मा जी से बोला—"महाराज! वे सभी पत्तियाँ कड़ुई थीं, पूजा योग्य नहीं थीं, इसलिए मैं उन्हें नहीं लाया।" महात्मा बोले—"पुत्र! इसी प्रकार जीवन से भी सभी कड़ुई चीजें फेंक देने योग्य होती हैं। तुम भी अपने अंदर से दोष-दुर्गुणों रूपी कड़ुआहट को फेंक दो और सबके प्रति मधुर बनो। मधुर व्यक्ति ही सम्मान का पात्र होता है।" उस दिन से अरिदमन का कायाकल्प हो गया।

रमण महर्षि की योग-परंपरा पर शोध
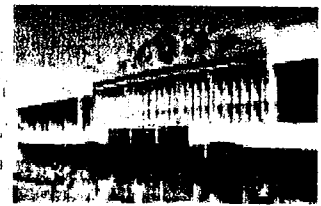
योग-अध्यात्म के क्षेत्र में आत्मानुसंधान की साधना ही सर्वोपरि है। इस साधना का मार्ग बाहर नहीं, अपितु अपने भीतर स्थित है। स्वयं के अंदर चैतन्य आत्मा की खोज करना और आत्मानुभूति के परम भाव 'सच्चिदानंद' की प्राप्ति, भीतर के साधना मार्ग पर चलकर ही संभव होती है।

हमारे ऋषियों ने अंतरस्थ चैतन्य की खोज के लिए अनेकों विधियों-प्रणालियों को विकसित किया है, जिन्हें अपनाकर हर कोई आत्मानुसंधान की यात्रा को पूर्ण कर सकता है। आत्मानुसंधान साधना का उद्देश्य स्वयं के भीतर स्थित शांति, संतुष्टि और आनंद के मूल और स्थायी स्रोत को खोज लेना है।

सामान्यतया व्यक्ति इन्हें बाहर की दुनिया में खोजता है; जबकि इनका वास्तविक केंद्र भीतर ही मौजूद है। बाहर का संसार तो पल-पल परिवर्तनशील और अंततः नश्वर है। उससे उत्पन्न कोई भी सुख-शांति अथवा संतोष स्थायी नहीं रहता। स्थायी रहने वाली शांति और आनंद को केवल भीतर ही प्राप्त किया जा सकता है। अज्ञानतावश लोग सुख-शांति को बाहर खोजते हैं और जब नहीं मिल पाते तो दुःख, विषाद और निराशा से जीवन को विकृत बना बैठते हैं।

यदि सच्चे अर्थों में सुख-शांति और संतुष्टि की प्राप्ति करनी हो तो उसको भीतर की यात्रा करके ही प्राप्त किया जा सकता है। योग अध्यात्म जगत् में स्वयं के भीतर की यात्रा के लिए ध्यानात्मक तकनीकों का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। आत्मानुसंधान साधना भी एक ऐसी ही ध्यानात्मक विधि है, जो व्यक्ति को भीतर के उस लक्ष्य की ओर ले जाती है, जहाँ जीवन का वास्तविक सुख, शांति और प्रसन्नता का केंद्र मौजूद है।

चूँकि सुख-शांति से युक्त जीवन की तलाश सभी करते हैं, परंतु उनकी खोज की दिशा बाहर होती है, इसलिए व्यक्ति अपनी मनोभावनात्मक परेशानियों का शिकार हो जाता है। जबकि खोज की दिशा भीतर होने पर समस्त मनोरोगों और व्यक्तित्व समस्याओं का स्वतः समाधान हो जाता है और यथार्थ लक्ष्य की प्राप्ति संभव होती है। उक्त तथ्य से स्पष्ट है कि वर्तमान समय में आत्मानुसंधान साधना जैसी विशिष्ट तकनीक की व्यक्ति के जीवन में कितनी ज्यादा महत्ता और आवश्यकता है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के योग विज्ञान एवं मानव चेतना विभाग के अंतर्गत आत्मानुसंधान (सेल्फ इन्क्वाइरी) साधना को लेकर एक महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन का कार्य संपन्न किया गया है। यह शोधकार्य वर्ष 2018 में शोधार्थी देयांग पार्क द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं प्रो. सुरेशलाल वर्णवाल तथा डॉ. सुशीम दुबे के निर्देशन में पूरा किया गया है।

इस अध्ययन का विषय है—**'कम्पेरेटिव स्टडी ऑफ पतंजलि योगा-सिस्टम एंड रमण महर्षि सेल्फ-इन्क्वाइरी ऑन मेडिटेशन।'** सैद्धांतिक विधि पर आधृत इस तुलनात्मक एवं विवेचनात्मक अध्ययन को कुल सात अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है। इस अध्ययन का प्रथम अध्याय 'विषय परिचय' है। इसके अंतर्गत अध्ययन की आवश्यकता और महत्त्व, साहित्य,

सर्वेक्षण, अध्यायों का विवरण एवं शोध-विषय के महत्त्व को प्रस्तुत किया गया है।

वर्तमान में मानसिक और भावनात्मक स्तर पर बढ़ते तनाव और मानसिक अस्वस्थता का प्रमुख कारण मनुष्य का भौतिक जगत् एवं उसकी वस्तुओं से अत्यधिक लगाव है। इस समस्या के समाधान में ध्यान महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वहन कर सकता है। ध्यान से मानसिक स्वास्थ्य की उपलब्धि के साथ-साथ आंतरिक सजगता, चेतनता और आध्यात्मिक विकास भी होता है, अत: यह समग्र जीवन को उत्कर्ष प्रदान करने वाली विशिष्ट साधना है।

महर्षि पतंजलि ने अपने योग दर्शन में अष्टांग योग के अंतर्गत आठ तरह के ध्यान-साधना के अभ्यासों का उल्लेख किया है। इसी तरह अद्वैत वेदांत के प्रसिद्ध सिद्ध साधक महर्षि रमण ने मौन के सिद्धांतों के रूप में 'स्व' की अनुभूति का मार्ग प्रशस्त किया है। आत्मानुसंधान साधना में इन दोनों महापुरुषों की ध्यान-विधियों का महत्त्वपूर्ण स्थान एवं वैशिष्ट्य है।

इस विषय से संबंधित शोधकार्यों को प्रथम अध्याय में विषय परिचय के पश्चात शोधकार्य से जुड़े साहित्य-सर्वेक्षण को क्रमिक एवं व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया गया। इसके साथ ही सभी अध्यायों की विषय-विवेचना का सार संक्षेप में प्रस्तुतीकरण किया गया है, ताकि अध्येताओं को अपनी जिज्ञासा के अनुरूप उचित अध्ययन-सामग्री एवं जानकारी प्राप्त हो सके।

द्वितीय अध्याय में भारतीय दार्शनिक शाखाओं में प्रस्तुत विभिन्न ध्यानपद्धतियों की संक्षिप्त विवेचना की गई है। इसके अंतर्गत सांख्य, तंत्र, बुद्ध, गीता, योग, वेदांत आदि चिंतन धाराओं में आत्मानुसंधान की विधियों का संक्षिप्त प्रस्तुतीकरण है। सांख्य मत में पुरुष (चेतन तत्त्व) और प्रकृति दो भिन्न तत्त्व हैं, परंतु अज्ञान के कारण इसे एक ही समझ लेना समस्त दु:खों का कारण है। ध्यान द्वारा इन दोनों की भिन्नता का बोध प्राप्त कर अपने वास्तविक चेतन स्वरूप को प्राप्त कर लेना ही आत्मानुसंधान का चरम लक्ष्य है।

तंत्र में प्रकृति अर्थात शक्ति की साधना से शिव तत्त्व के रूप में परमज्ञान की प्राप्ति का विधान है। अलग-अलग भावनाओं पर आधृत तंत्र योग की विभिन्न धाराओं का अंतिम लक्ष्य शक्ति और शिव के रूप में प्रतिष्ठित अद्वैत तत्त्व को प्राप्त करना है।

बौद्ध साधनाओं में भी ध्यान को आंतरिक रूपांतरण की विशिष्ट एवं प्रभावी तकनीक के रूप में स्थान प्राप्त है। यहाँ ध्यान के लिए 'भावना' शब्द को प्रयुक्त किया गया है। सजगता, शांति और विपश्यना अर्थात सक्रिया ध्यान की विधि द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति कर समस्त दु:खों से मुक्ति ही बुद्धप्रदत्त योग का परम लक्ष्य है।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग के रूप में तीनों योगों के उच्चस्तरीय लक्ष्य को प्राप्त कराने वाले तीन विशिष्ट ध्यान-मार्ग हैं। इन सभी में चेतना की दिशा को बाह्य संसार से हटाकर आत्मानुसंधान के मार्ग में प्रवृत्त बनाए रखना है।

गीता के मार्ग की भाँति ही मंत्र योग में ओंकार-साधना, राजयोग की अष्टांग यौगिक ध्यान-विधियाँ और वेदांत की निदिध्यासन साधना-सभी में 'स्व' को उपलब्ध कराने वाली विशिष्ट ध्यानपद्धतियाँ सन्निहित हैं। इन सभी भिन्न-भिन्न दार्शनिक चिंतन और इनकी साधना अभ्यास का अंतिम लक्ष्य आंतरिक संपूर्णता और स्वतंत्रता की प्राप्ति ही है। अध्ययन का तीसरा अध्याय है—योग दर्शन एवं वेदांत दर्शन के महत्त्वपूर्ण सिद्धांत। इसके अंतर्गत योगसूत्र में प्रस्तुत योग की परिभाषा, अर्थ, स्वरूप और विभिन्न सोपानों की विस्तृत विवेचना की है।

इसी तरह वेदांत दर्शन के प्रमुख सिद्धांत, विशेषकर अद्वैत वेदांत में प्रस्तुत ब्रह्म और माया

संबंधी अवधारणाओं की विवेचना करते हुए मानवीय चेतना के क्रमिक सोपानों की व्याख्या की गई है। इसमें चेतना के माया से मुक्त होकर ब्रह्मरूप परमज्ञान में प्रतिष्ठित होने की साधना-प्रक्रियाओं का उल्लेख हुआ है।

पतंजलि योग के सिद्धांतों में चेतना के स्थूल से सूक्ष्म में गति का विज्ञान एवं प्रक्रियाएँ हैं। इसके सिद्धांतों एवं साधना-विधियों को चार सोपानों के 195 सूत्रों में प्रस्तुत किया गया है तथा अष्टांग चरणों को बाह्य एवं आंतरिक अभ्यास की तकनीकों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वेदांत-साधना भी बहिरंग और अंतरंग—दो रूपों में है। बहिरंग में साधन चतुष्टय और अंतरंग साधन-अभ्यास में श्रवण, मनन और निदिध्यासन का उल्लेख है।

चतुर्थ अध्याय है—पतंजलि योग में ध्यान। इसके अंतर्गत पतंजलि योग का मुख्य लक्ष्य 'चित्तवृत्ति का निरोध' का विवेचन करते हुए चित्त के स्वरूप, अवस्थाएँ, वृत्तियाँ आदि की विशद् व्याख्या की गई है। योगाभ्यास में योग अंतराय के रूप में बाधक तत्त्व और चित्त प्रसादन के रूप में साधक तत्त्वों को प्रस्तुत करते हुए योगसूत्र के यम, नियम, आसन आदि आठ अंगों की विस्तृत विवेचना की गई है।

पतंजलि योग में प्रस्तुत विभिन्न ध्यान-अभ्यास का एकमात्र लक्ष्य कैवल्य की प्राप्ति में सहायता प्रदान करना है। इस योग में अलग-अलग वस्तुओं, विचारों एवं भावनाओं पर संयम अर्थात ध्यान सिद्धि की भिन्न-भिन्न फलश्रुति बताई गई हैं।

पंचम अध्याय में महर्षि रमण के योग चिंतन में ध्यान की आत्मानुसंधान विधि की विस्तृत विवेचना की गई है। वैसे तो यह भारत की एक प्राचीन विधि है, परंतु महर्षि रमण द्वारा सन् 1902 में इसे एक समग्र ध्यान विधा के रूप में प्रवर्तित किया गया है। हमारे अस्तित्व के सार रूप में स्थित आत्मतत्त्व और जीवन के सभी आयामों में उसकी अभिव्यक्ति को अनुभव करने में यह अत्यंत प्रभावी ध्यान-प्रक्रिया है।

इस विधि के लिए सामान्य शब्द 'आत्मविचार' प्रयुक्त किया गया है। शरीर, मन, विचार, भाव, अहं आदि में कौन वास्तविकता में हमारे 'स्व' का हिस्सा है और यदि इन सबसे परे 'स्व' अर्थात हमारी आत्मा है तो फिर उसका स्वरूप और उसकी अनुभूति क्या है, यही प्रक्रिया इस ध्यान-विधि का सार है। स्वयं के भीतर अपनी वास्तविक पहचान और 'स्व' की खोज की यह एक सुव्यवस्थित ध्यानपद्धति है। महर्षि रमण की मौन ध्यान-साधना आत्मानुसंधान और आत्मोपलब्धि का उत्कृष्टम साधन है।

इस ध्यान-विधि का प्रारंभ ही इस प्रश्न के साथ होता है कि 'मैं कौन हूँ?' इस प्रक्रिया में मन की सजगता प्राप्त कर स्वयं के भीतर ही पड़ताल करनी होती है कि जीवन की कौन-कौन-सी चीजें 'स्व' से अलग हैं। 'स्व' से भिन्न चीजों का निराकरण करते-करते यह ध्यान-विधि वास्तविक 'स्व' के समीप पहुँचा देती है।

महर्षि रमण के विचारों में जब वास्तविक 'स्व' की उपलब्धि होती है तो साथ ही यह भी बोध हो जाता है कि हमारी आत्मा में ही परमात्मा का स्वरूप स्थित है। हमारे अज्ञान के कारण ही हमें हमारे यथार्थ स्वरूप का सम्यक रूप से अनुभव नहीं हो पाता है, लेकिन आत्मविचार की विधि हमारी आंतरिक चेतनता को विकसित कर ज्ञान एवं बोध के उस स्तर पर पहुँचा देती है, जहाँ पहुँचकर हमें अपने वास्तविक 'आत्म स्वरूप' की उपलब्धि होती है।

यही जीवन का परम लक्ष्य है, जिसे आत्मानुसंधान द्वारा बड़ी सजगता से प्राप्त किया जा सकता है। षष्ठ अध्याय में महर्षि पतंजलि और महर्षि रमण की ध्यान तकनीकों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

पतंजलि योग का सैद्धांतिक आधार पुरुष और प्रकृति—दो सर्वथा विपरीत तत्त्वों के बोध पर आधृत है; जबकि महर्षि रमण विशुद्ध रूप से एक ही परम तत्त्व की सत्ता के समर्थक हैं। उनकी साधना-प्रक्रियाएँ अद्वैतवादी विचारों पर आधृत हैं। अत: दोनों के ध्यान संबंधी अभ्यास की प्रक्रियाओं में पर्याप्त अंतर है, लेकिन दूसरा पहलू यह भी है कि दोनों की ध्यान-विधियाँ अपने उद्देश्य के स्तर पर समान रूप से कैवल्यरूपी परम लक्ष्य की प्राप्ति कराने वाली हैं।

दोनों ही ध्यान-विधियों की अपनी स्वतंत्र मौलिकता और विशिष्टता है तथा व्यावहारिक धरातल पर इनका अभ्यास व्यक्ति को उसके अंतिम लक्ष्य तक पहुँचाने में समान रूप से प्रभावी एवं महत्त्वपूर्ण है। अध्ययन का अंतिम अध्याय 'उपसंहार' है। इसके अंतर्गत शोधकार्य का सारांश प्रस्तुत करते हुए निष्कर्ष रूप में इसके महत्त्व, विशिष्टता, प्रासंगिकता एवं उपादेयता की विवेचना की गई है।

यह अध्ययन इस तथ्य की स्पष्ट विवेचना करता है कि भारतीय दर्शन में योग और वेदांत—दोनों भिन्न प्रणालियाँ होते हुए भी अपने साधना परिणामों में मानव जीवन एवं व्यक्तित्व को समान रूप से विकसित और पूर्णता प्रदान करने वाली यौगिक तकनीकों को प्रस्तुत करते हैं।

इस अध्ययन के माध्यम से अनेक ध्यान तकनीकों की जानकारी प्रस्तुत की गई है, ताकि व्यक्ति अपनी प्रवृत्ति एवं रुचि के अनुरूप इनका चयन कर आत्मानुसंधान की साधना में प्रवृत्त हो सके। ध्यान की इस विशिष्ट साधना में व्यक्तित्व समस्याओं का सहज समाधान और अपने यथार्थ स्वरूप की उपलब्धि—दोनों लक्ष्य के सिद्ध होने का अध्यात्म विज्ञान समाहित है। ❑

पता-फोन परिवर्तन सूचना

अखण्ड ज्योति संस्थान का स्थान परिवर्तित हो गया है, नया पता अब इस प्रकार है—

अखण्ड ज्योति संस्थान

बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड, जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)

बदले हुए नए फोन नंबर

दूरभाष नंबर : (0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449

मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039

कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस.एम.एस. न करें

नया ईमेल-akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

तामसिक दान का आधार

(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की इक्कीसवीं किस्त)

[इससे पूर्व की किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के इक्कीसवें श्लोक पर चर्चा की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान कहते हैं कि जो दान क्लेशपूर्वक और प्रत्युपकार के लिए अथवा फलप्राप्ति का उद्देश्य बनाकर किया जाता है, वह दान राजसिक दान कहलाता है। वह दान जिसमें प्रत्युपकार की भावना निहित होती है अर्थात देते समय कहीं मन में यह भाव होता है कि हम आज इस व्यक्ति की सहायता कर रहे हैं तो यह भी हमारी सहायता करे, सहयोग करे। क्लेशपूर्वक देते समय व्यक्ति के मन में आंतरिक आनंद का भाव नहीं होता, बल्कि वह व्यक्ति मन मसोसकर, येन-केन-प्रकारेण अपने दायित्व को पूर्ण करना चाहता है—ऐसे दान को राजसिक दान ही कहा जा सकता है।

इस संदर्भ में कठोपनिषद् की नचिकेता-यम की कहानी सही ठहरती है। जिस तरह के दान को देने का भाव नचिकेता के पिता के मन में आया, वो राजसी दान है। उसमें क्लेशयुक्त भाव सन्निहित है। सात्त्विक दान में देने वाले के हृदय में कर्त्तव्य और दायित्व का बोध होता है। कर्त्तव्य का अर्थ यह नहीं कि हम उसे बोझ समझकर जबरदस्ती कर रहे हैं, वरन कर्त्तव्य शब्द का अर्थ इस भाव से है कि उस कार्य को करना जिसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी करने योग्य नहीं रह जाता। इसलिए सात्त्विक दान आंतरिक आनंद के फलस्वरूप प्रवाहित होता है। उसमें दान देने वाला, दान पाने वाले से ज्यादा तृप्त और तुष्ट अनुभव करता है। इसके विपरीत राजसी दान देने वाला दान देकर भी असंतुष्ट और अतृप्त अनुभव करेगा; क्योंकि वह उसे प्रत्युत्तर की कामना से क्लेशपूर्वक कर रहा है। ऐसे दान का परिणाम भी क्लेशपूर्ण ही आता है।]

इसके बाद भगवान कृष्ण कहते हैं कि

आदेशकाले यद्दनमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥ *22*॥

शब्दविग्रह—अदेशकाले, यत्, दानम्, अपात्रेभ्यः, च, दीयते, असत्कृतम्, अवज्ञातम्, तत्, तामसम्, उदाहृतम्।

शब्दार्थ—जो (**यत्**), दान (**दानम्**), बिना सत्कार के (**असत्कृतम्**), अथवा (**वा**), तिरस्कारपूर्वक (**अवज्ञातम्**), अयोग्य देश-काल में (**अदेशकाले**), और (**च**), कुपात्र के प्रति (**अपात्रेभ्यः**), दिया जाता है (**दीयते**), वह दान (**तत्**), तामस (**तामसम्**), कहा गया है (**उदाहृतम्**)।

अर्थात जो दान बिना सत्कार के तथा अवज्ञापूर्वक अयोग्य देश और काल में कुपात्र को दिया जाता है, वह दान तामस कहा गया है। दान देते समय यदि भावना अपमान की है अर्थात ऐसा भाव है कि हम दान नहीं दे रहे, वरन इस व्यक्ति

के ऊपर किसी तरह का एहसान कर रहे हैं तो वो असत्कार की भावना, अवज्ञा की भावना तामसिक दान का पहला आधार बनती है। भगवान कृष्ण ऐसी भावना को 'असत्कृतम्' एवं 'अवज्ञातम्' कहकर पुकारते हैं।

कई लोग दान देते तो हैं, परंतु मन में कहीं यह भावना होती है कि जिसे दान दिया जा रहा है, वो हमसे हीन है, तुच्छ है और वो उनको दान इस तरह देने का प्रयत्न करते हैं मानो भिक्षा दी जा रही हो। इस भावना को भगवान कृष्ण तामसिक भावना कहते हैं। साथ ही दान देते समय कुछ लोग परिस्थितियाँ, समय, काल इत्यादि नहीं देखते— इस भावना को भी भगवान कृष्ण तामसिक दान मानते हैं। जैसे दान देने के लिए मन में श्रद्धा होनी आवश्यक होती है। तैत्तिरीय उपनिषद् कहता है—

श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्।
श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्।
भिया देयम्। संविदा देयम्।

—*तैत्ति० उप० 1/11*

यह दान अपनी क्षमता के अनुसार, सुपात्र को देना चाहिए और दान यदि तीर्थस्थल, उचित समय व मुहूर्त में दिया जाए तो उसका परिणाम भी शुभ आता है। महाभारत में तो यहाँ तक कहा गया है कि

एकस्मिन्नप्यतिक्रान्ते दिने दानविवर्जिते।
वस्युभिर्मुषितस्येव युक्तमाक्रन्दितुं भृशम्॥

अर्थात यदि एक दिन भी दान के बिना बीत जाए तो उस दिन इस तरह का शोक प्रकट करना चाहिए, जिस तरह लुटेरों से लुट जाने पर मनुष्य करता है।

भगवान कृष्ण कहते हैं कि तामसिक व्यक्ति इन शास्त्रोक्त बातों को नहीं मानता और कुपात्र को देने में, कुसमय देने में, गलत उद्देश्य के लिए देने में संकोच नहीं करता। ऐसे दान को भगवान कृष्ण तामसिक दान कहकर पुकारते हैं।

यहाँ पर स्मरणीय है कि शास्त्र ये भी कहते हैं कि दान देते समय अन्न, जल, वस्त्र और औषधि का यदि दान किया जा रहा हो तो ऐसे में पात्र-कुपात्र पर विचार नहीं किया जाता।

इस तरह कुपात्र को देने वाला, असत्कार, अवज्ञा से देने वाला दान तामसिक दान कहलाता है।

(क्रमशः)

स्वामी रामकृष्ण परमहंस से उनके शिष्यों ने पूछा—"अवतार की पहचान कैसे होती है?"

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने उत्तर दिया—" मन से कामिनी और कांचन के गए बिना अवतार को पहचानना मुश्किल है। किसी बैंगन बेचने वाले से यदि तुम हीरे का मोल पूछोगे तो वो यही कहेगा कि मैं इसके बदले नौ सेर बैंगन दे सकता हूँ, इससे ज्यादा कुछ नहीं दे सकता। हीरे की कीमत जानने के लिए जौहरी के पास जाना जरूरी है। ऐसे ही अवतार को पहचानने के लिए मन में निरासक्ति का भाव आवश्यक है।" जो स्वयं तृष्णाओं, कामनाओं और महत्त्वाकांक्षाओं से घिरा हुआ है, वह दिव्यता की क्या पहचान कर पाएगा।

नई शिक्षा नीति एवं शिक्षकों की भूमिका

नई शिक्षा नीति में 21वीं सदी की चुनौतियों के अनुरूप एक नया भारत गढ़ने की महत्त्वाकांक्षी योजना को क्रियान्वित किया जा रहा है। इसके अंतर्गत छात्र-छात्राओं में 21वीं सदी की आवश्यकताओं एवं चुनौतियों के अनुरूप ज्ञान, कौशल एवं समावेशी तथा लचीली सोच को विकसित करने की बात कही गई है। जिसमें शिक्षकों को अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है।

विद्यार्थियों को जिन सद्गुणों से, जिस कौशल से संपन्न बनाकर एक बेहतर नागरिक एवं सर्वांगपूर्ण व्यक्तित्व बनाने की इसमें मंशा व्यक्त की गई है, इस प्रक्रिया को हर शिक्षक को अपने स्तर पर लागू करना है। अपने विषय के क्षेत्र में कैसा पाठ्यक्रम तैयार करना है, विद्यार्थियों को उस विषय का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक ज्ञान कैसे देना है, उसके आधार पर किस तरह से जीवन एवं समाज की व्यावहारिक समस्याओं का समाधान हो सके, यह शिक्षकों को तय करना है।

आशा की जाती है कि हर शिक्षक पाठ्यक्रम को तैयार करने में अपनी भूमिका निभाएगा और इसे परिणाम (आउटकम) आधारित बनाएगा और फिर विषय-वस्तु के अनुरूप विभिन्न शिक्षणपद्धतियों का उपयोग करते हुए विद्यार्थियों को विषय के मर्म से परिचय कराएगा।

शिक्षक का कार्य विद्यार्थियों को मात्र लेक्चर देना नहीं है, बल्कि ऐसा वातावरण तैयार करना है, जहाँ छात्र-छात्राएँ स्वयं अधिक-से-अधिक सीखने के लिए तैयार हो सकें। शिक्षकों को विद्यार्थियों को स्वयं सोचने के लिए प्रेरित करना है, उन्हें जीवनपर्यंत विद्यार्थी बनाना है।

यह तभी संभव होगा जब शिक्षक स्वयं विद्यार्थी भाव के साथ अपने विषय में रुचि ले रहे होंगे, विषय की नवीनतम जानकारी के साथ स्वयं को परिचित करा रहे होंगे और स्वयं अध्ययन व स्वाध्याय के लिए नित्यप्रति सचेष्ट हो रहे होंगे। जो शिक्षक ऐसा नहीं कर पाएँगे, वे समय के साथ अप्रासंगिक होते जाएँगे व एक प्रभावी शिक्षक के रूप में अपनी सार्थक भूमिका निभाने में स्वयं को असमर्थ पाएँगे।

चूँकि शिक्षा ज्ञान एवं विद्या से जुड़ी हुई विधा है, अत: ऐसे ही लोगों को इस क्षेत्र में आना चाहिए, जो ज्ञान के प्रति पिपासा रखते हों। मात्र रोजी-रोटी के लिए, रोजगार के लिए शिक्षा में आना अधिक मायने नहीं रखता। अपनी क्षमता व रुचि के अनुरूप वे दूसरे पेशे में अपनी सार्थक भूमिका निभा सकते हैं।

यदि शिक्षक में सीखने व सिखाने का भाव नहीं है, तो वह अपनी विधा के साथ न्याय नहीं कर सकेगा। चूँकि युग तकनीकी एवं वैश्विक संचार का है, अत: शिक्षकों को इस भूमिका में भी स्वयं को तैयार करना होगा।

वस्तुत: 20वीं सदी की मानसिकता के साथ 21वीं सदी की चुनौतियों का सामना नहीं किया जा सकता। शिक्षक को युग की बदलती परिस्थितियों के साथ कदम-ताल करना होगा। शिक्षकों को न्यूनतम तकनीकी ज्ञान से युक्त होना होगा एवं किस तरह से संचार क्रांति के उपकरणों

का शिक्षा में समावेश हो सकता है, इसको सीखना होगा।

जब पूरा विश्व एक ग्राम में रूपांतरित हो रहा है, ऐसे में अपनी मातृ एवं क्षेत्रीय भाषा के साथ महत्त्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय भाषाओं का भी ज्ञान रखना होगा, जिससे एक शिक्षक अपने ज्ञान का अधिकतम लोगों तक विस्तार कर सके।

परमपूज्य गुरुदेव इस संदर्भ में अपने शिष्यों, अनुयायियों व हर प्रगतिशील इनसान के लिए एक प्रेरक मिसाल हैं, जिन्होंने जेल में तसले व कोयले का उपयोग करते हुए अँगरेजी भाषा का ज्ञान प्राप्त किया था और जीवनपर्यंत एक विद्यार्थी भाव से नित नए विषयों का ज्ञान बटोरते रहे व कलम चलाते रहे।

नई शिक्षा नीति में समग्र शिक्षा पर विचार किया गया है, विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित करने की बात की गई है। हर शिक्षक के लिए यह सोचने का विषय है कि वह किस तरह से अपने स्तर पर इस उद्‌देश्य की पूर्ति कर सकता है।

निश्चित रूप से शिक्षक को साँचे के रूप में स्वयं के सर्वांगीण विकास पर कार्य करना होगा, तभी वह उस समग्र शिक्षा का संप्रेषण विद्यार्थियों के बीच कर पाएगा। नई शिक्षा नीति के अनुसार किताबी ज्ञान व कक्षाओं में लेक्चर देने भर से शिक्षा का उद्‌देश्य पूरा नहीं हो सकता। इसके लिए कक्षा में आपसी चर्चा के साथ-साथ बाहर की गतिविधियों पर आधारित, व्यावहारिक एवं कौशलप्रधान ज्ञान को भी सिखाना होगा।

इसके लिए प्रयोगशाला से लेकर क्षेत्र एवं समाज के बीच जाना होगा, जहाँ विषय का प्रायोगिक ज्ञान सिखाया जा सके व इसके माध्यम से जीवन की व्यावहारिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत हो सके।

शिक्षा को जीवन से जोड़ना होगा, इसके विभिन्न पक्षों को समझने व इनसे जुड़ी वर्तमान एवं संभावित समस्याओं के निराकरण की सोच को विकसित करते हुए बेहतर समाज एवं विश्व को बनाने पर विचार करना होगा। हर विद्यार्थी का स्वभाव, रुचि एवं स्तर भिन्न-भिन्न होता है।

शिक्षकों को सबकी स्थिति एवं आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा के संप्रेषण की विधा को विकसित करना होगा, जो एक कठिन एवं चुनौतीपूर्ण कार्य है, किंतु अपने पेशे से न्याय के लिए शिक्षकों को इस उत्तरदायित्व का निर्वाह करना होगा। खासकर जो विद्यार्थी पिछड़े हुए हैं, उन्हें न्यूनतम स्तर तक लाने के लिए शिक्षक को मशक्कत करनी होगी।

विद्यार्थी का उसकी क्षमता, प्रकृति एवं संभावना के अनुरूप श्रेष्ठतम विकास, एक शिक्षक के लिए सबसे बड़े संतोष का विषय हो सकता है। नई शिक्षा नीति में कौशल आधारित शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है।

शिक्षा व्यक्ति को एक बेहतर नागरिक बनाए, साथ ही श्रम की गरिमा को समझाते हुए उसको रोजगार भी सुनिश्चित करे—इस पर शिक्षक को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। उसे स्वयं भी अमुक कौशल से संपन्न होना होगा, जो व्यक्ति को अपने पैरों पर खड़ा करती हो, जो उसे आर्थिक रूप से स्वाबलंबी बनाती हो।

ऐसी कौशलप्रधान शिक्षा देना शिक्षक का पावन कर्त्तव्य बनता है, जो विद्यार्थियों को जीवनपर्यंत आत्मनिर्भर बनाती हो, जीवन की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम बनाती हो। यहाँ विषयगत तकनीकी ज्ञान के साथ जीवन कौशल का शिक्षण भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

जीवन में उच्चतर मूल्यों का समावेश कैसे हो, विद्यार्थी एक श्रेष्ठ इनसान व आदर्श नागरिक

कैसे बने, उस पर भी शिक्षक का दायित्व बनता है, जो आज के शिक्षण संस्थानों में प्रायः उपेक्षित है। इस पिछड़े क्षेत्र में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। परमपूज्य गुरुदेव ने इस संदर्भ में शिक्षा के साथ विद्या के समावेश की बात कही है, जिसका हमें पालन करना है।

इस तरह नई शिक्षा नीति विद्यार्थियों के लिए नई संभावनाओं को लेकर आई है, जिससे नई पीढ़ी सर्वांगीण विकास के साथ अपने जीवनलक्ष्य को प्राप्त कर सके, समाज-राष्ट्र के निर्माण में सहायक बनते हुए, वैश्विक स्तर पर अपना सार्थक योगदान दे सके। इसमें शिक्षकों को अपनी गुरुतर भूमिका निर्वहन के लिए तैयार रहना होगा। शिक्षा नीति को जमीनी स्तर पर क्रियान्वित करने में उन्हें अपनी ऐतिहासिक एवं निर्णायक भूमिका अवश्य ही निभानी होगी। ❑

एक दिन महाराजा सुदास के पुत्र कल्याणपाद आखेट करके राजमहल लौट रहे थे। मार्ग में एक तंग पुलिया पड़ी, जिस पर से एक समय में एक ही व्यक्ति निकल सकता था। उस मार्ग पर दूसरी ओर से ऋषि वसिष्ठ के ज्येष्ठ पुत्र शक्ति मुनि आ रहे थे। दोनों ही हठधर्मिता के कारण पुलिया के दोनों सिरों पर खड़े रहे और दूसरे को निकलने का स्थान न दिया। बहुत देर तक ऐसा होने पर शक्ति मुनि ने क्रोध में आकर कल्याणपाद को राक्षस बन जाने का शाप दे दिया। राक्षस बनते ही कल्याणपाद ने शक्ति मुनि का ही भक्षण कर लिया।

उस समय शक्ति मुनि की पत्नी दृश्यन्ती गर्भवती थी, जिसने कालांतर में पराशर मुनि को जन्म दिया। महर्षि वसिष्ठ ने कल्याणपाद को पुत्रहंता होने पर भी क्षमादान देते हुए राक्षस शरीर के शाप से मुक्त कर दिया। जब पराशर मुनि बड़े हुए और उन्हें अपने पिता की मृत्यु का कारण पता चला तो वे क्रोधित हो उठे और पुनः कल्याणपाद से प्रतिशोध लेने को उद्यत हो गए।

महर्षि वसिष्ठ ने जब अपने पौत्र को प्रतिशोध की भावना से उत्तप्त देखा तो उन्होंने उनको पास बुलाकर कहा—"पुत्र पराशर! क्रोध करना शूरवीरता का नहीं, मानवीय दुर्बलता का प्रतीक है। सच्चा शौर्य तो अपराधी को क्षमा करने में है। ऐसा नहीं है कि पुत्र की मृत्यु का दरद मुझे न हुआ हो और मैं कल्याणपाद को सजा देने की सामर्थ्य न रखता हूँ, परंतु मैंने यह अनुभव किया कि किसी और का जीवन हरण करने से मेरे पुत्र को लौटा पाना संभव नहीं है। क्षमा करने के लिए ज्यादा बड़े हृदय की आवश्यकता है।" महर्षि वसिष्ठ की बात सुनकर पराशर मुनि का हृदय बदल गया।

अनुदान और वरदान (पूर्वार्द्ध)
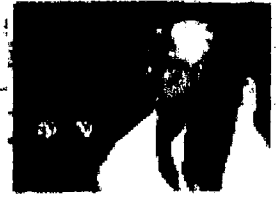
परमवंदनीया माताजी के उद्‌बोधनों की मौलिकता है कि वे न केवल एक सामान्य, साधारण व्यक्ति के हृदय को स्पर्श कर पाने की स्थिति में होते हैं, वरन वे प्रबुद्ध वर्ग के भीतर भी कुछ करने का उत्साह जगा पाने की स्थिति में होते हैं। अपने एक ऐसे ही प्रस्तुत उद्‌बोधन में परमवंदनीया माताजी नवदिवसीय अनुष्ठान की पूर्णाहुति के अवसर पर सभी गायत्रीसाधकों एवं परिजनों को यह आश्वासन देती हैं कि हर घड़ी एवं हर पल वे उनके साथ हैं। इसके साथ ही वे हर साधक को यह स्मरण दिलाती हैं कि गायत्री-साधना का मूल आधार एवं गायत्री-साधना करने से जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का यदि अध्ययन करना हो तो पूज्य गुरुदेव के जीवन से प्रेरणा प्राप्त करने की आवश्यकता है। उनके द्वारा निर्दिष्ट पथ पर आगे बढ़ने वाला ही साधना के परिणामों को हस्तगत कर पाता है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.......

अनुदान और वरदान

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

हमारे आत्मीय परिजनो! आज आपके अनुष्ठान की पूर्णाहुति है। आज आप विदा हो जाएँगे। इन नौ दिनों में आप अपने को कितना खाली कर पाए? मालूम नहीं। आपने अपने लिए कितना आत्मचिंतन किया, पता नहीं। इन दिनों में क्या आपने अपने बारे में कभी सोचा कि मनुष्य का जीवन कैसे सार्थक किया जा सकता है, क्या आपने विचार किया? पता नहीं, आपने किया कि नहीं किया।

आप जो पाने के लिए आए थे, मालूम नहीं, आप क्या पाने के लिए आए थे? लेकिन इन दिनों आपके लिए जितना श्रम किया गया, आपके सोते में, जागते में हर समय हम आपके साथ-साथ रहे। मालूम नहीं, आप सोते रहे अथवा आप जाग्रत रहे? जाग्रत रहे होंगे, तो आपने अनुभव किया होगा; लेकिन यदि आप सोते ही रहे होंगे, तो मालूम नहीं कितना अनुदान और वरदान आप साथ ले जा पाएँगे, लेकिन देने वाले की कोई कमी नहीं रही। उसने आप को भरपूर दिया। बेटे! कुछ नहीं रहा, सब खाली हो गया। कुछ भी अपने पास नहीं रखा, सब आपके दामन में डाल दिया।

हर समय आपके साथ हैं हम

अब पता नहीं है कि दामन में भरे हुए को आप छलका गए कि साथ में ले जा रहे हैं, कुछ मालूम नहीं, कुछ कह नहीं सकते। हर समय हम आपके साथ रहे। हर समय हम आपके दाएँ और बाएँ और आगे और पीछे बराबर बने रहे। बेटे! गुरुजी बने रहे, हम बने रहे। गायत्री माता बनी रहीं। हम लोग हर समय आपको अपनी छाती से, अपने कलेजे से लगाए रहे। जैसे एक मुरगी अपने अंडे

को सेती है। इस तरीके से आपको आध्यात्मिक दृष्टि से हम छाती से लगाए रहे, आपको सेते रहे। हर बच्चे के, हर अपने परिजन के मन में हमने झाँक-झाँककर देखा और हर परिजन को हिम्मत और दिलासा दिलाते रहे।

कबूतर-कबूतरी की कथा

बेटे! आप इस दरवाजे पर आए हैं, तो आप खाली जाएँगे? नहीं, आप खाली नहीं जा सकते। कोई भी खाली नहीं गया, तो आप खाली कैसे जाएँगे। हमें वह कहावत याद है, कौन-सी? एक कहानी है—एक कबूतर और कबूतरी का जोड़ा पेड़ की डाल पर बैठा ऊपर से देख रहा था और एक याचक बहेलिया आया। वह कई दिनों से भूखा था। भूखा ही सो गया। कबूतर और कबूतरी विचार करने लगे।

उन्होंने विचार किया कि आज हमारे द्वार पर अतिथि आया हुआ है, क्या यह भूखा ही चला जाएगा? उन्होंने कहा नहीं? भूखा नहीं जाना चाहिए; क्योंकि ये हमारे अतिथि हैं, हमारे दरवाजे पर आए हैं, हमारा कुटुंब, हमारा ये सब कुछ हैं। तो कबूतर बोला—एक काम क्यों न किया जाए? कबूतरी ने कहा—क्या? कबूतर ने कहा कि अपने जीवन की सार्थकता इसी में है कि हमारे खून का एक-एक जर्रा इसके काम आ जाए।

कबूतरी ने कहा—बहुत अच्छी बात है, ऐसा ही करना चाहिए, तो कबूतर गया और कहीं से घास-फूस इकट्ठा कर लाया तथा उसे कुछ दूरी पर उसने वहाँ डाल दिया, जहाँ कि बहेलिया भूखा बैठा था। कबूतरी गई, कहीं से तीली लेकर के आई एवं उसमें चिनगारी लगा दी और दोनों कबूतर-कबूतरी उसमें स्वाहा हो गए। जब बहेलिया उठा, तो उसने देखा कि पका-पकाया भोजन मिल गया है। भगवान के लिए बार-बार धन्यवाद देता हुआ, उसने वो भोजन ग्रहण किया और उसकी क्षुधा की तृप्ति हुई।

बेटे! हम कबूतर-कबूतरी तो नहीं हैं और हम शरीर की आहुति भी नहीं दे रहे हैं, यह भी सही है; लेकिन हमने हर क्षण आपके लिए अपने मन की आहुति दे डाली।

आपके अंदर आपकी क्षुधा की पूर्ति हुई कि नहीं हुई, हमको नहीं मालूम, लेकिन हमारा प्रयास जरूर है कि आपकी क्षुधा को हम जरूर तृप्त करें।

एक व्यक्ति समुद्र के किनारे लहरों के साथ बहकर आती सीपों, मछलियों को उठा-उठाकर वापस गहरे पानी में फेंक रहा था। उसे ऐसा करते हुए दूसरे व्यक्ति ने देखा तो टोककर कहा—"तुम्हारे ऐसा करने से क्या फरक पड़ेगा? कल दूसरे हजारों प्राणी यहाँ आकर बह लगेंगे।"

वह व्यक्ति बोला—"और किसी पर फरक न भी पड़े, पर जिस एक प्राणी का जीवन ऐसा करने से बचेगा, उसके जीवन पर तो निश्चित रूप से फरक पड़ेगा। मैं यह कार्य उस छोटे से फरक के लिए कर रहा हूँ।" सत्य बात है कि छोटे-छोटे शुभ कार्य ही बड़े प्रभावों को जन्म देते हैं।

आत्मबल का वरदान

बेटे! आपकी वह तृप्ति हम कर सकेंगे कि नहीं कर सकेंगे, जो कि आप माँगने आए हैं। बेटा! दे दीजिए, तीन बेटी हैं, चौथा बेटा भी चाहिए। बेटा! इसमें तो हमारा जरा भी—कतई विश्वास नहीं है कि आपको बेटा हो जाएगा, तो आपके ऊपर सोने की छत्रछाया कर न मालूम जाने क्या

करेगा? आप तो जैसे संकीर्ण हैं। मुबारक रहे, आपके लिए संकीर्णता, लेकिन हमने आपको इतना आत्मबल दिया है, भरपूर आत्मबल दिया है और हमने कहा है कि हम आपकी जिम्मेदारी लेते हैं, हम आपको ऊँचा उठाएँगे।

हर परिस्थितियों से टकराने के लिए हम आपको लोहा बना देंगे, फौलाद बना देंगे; ताकि आपको देख करके दुनिया नसीहत पाए कि हमने आपको इन नौ दिनों में भरपूर दिया है। बेटे! गुरुजी ने जो भी बीड़ा उठाया, हमेशा उसको पूरा किया है। आपका संकल्प है, मालूम नहीं, जाने संकल्प में भी आपके तो विकल्प पैदा हो जाते हैं। हमेशा जाने संकल्प कहाँ चला जाता है? लेकिन उन्होंने जिस दिन से बीड़ा उठाया है, शपथ ली है और जिस दिन से उन्होंने अपने गुरु को वरण किया है। गुरु के हर आदेश का वे पालन करते हैं और हर समय गायत्री माता की गोद में विचरण करते रहते हैं। हर समय उनकी छत्रछाया मिलती रहती है।

मालूम नहीं है कि आपने गायत्री माता की उपासना इस दृष्टि से की है, और कैसे की है? यदि आपके मन में वह श्रद्धा, विश्वास और आस्था होगी, तो बिलकुल आप भी वही छत्रछाया पा सकते हैं, जो हमने पाई है और नहीं, तो बेटे खाली हाथ जाएँगे।

भूल जाएँ कठिनाइयाँ

मैंने एक बात आपसे निवेदन की थी, वह यह की थी कि आप अपने अंत:करण को खाली रखना और इन नौ दिनों में आप इस संसारी, मायावी दुनिया को भूल जाना कि आपका कोई गृहस्थ जीवन भी था, आपके कोई बाल-बच्चे भी थे, आपका कोई मुकदमा भी था। इनकम टैक्स-सेल्सटैक्स जो भी हो, आपके व्यक्तिगत जीवन में कोई कठिनाइयाँ भी हैं क्या?

आप भूल जाइए उन सब कठिनाइयों को और आप हमारी झोली में भर जाइए। आप उन कठिनाइयों को हमको दे जाइए। आपके हिस्से की उन कठिनाइयों से हम जूझेंगे। हम उनका पूरा निराकरण कर देंगे, यह तो हम कोई वायदा नहीं करते, लेकिन बेटे! हम सरल जरूर कर देंगे। आपको ऐसा मालूम पड़ेगा कि कठिनाइयाँ जाने किधर जादू के तरीके से चली गईं। आपको उससे मुकाबले के लिए हिम्मत और साहस देंगे। जो गलती की है, वो तो आप कर बैठे; लेकिन अब गलती नहीं की जाए, वह तो आप सोचिए।

आप वह संकल्प कीजिए कि हमको आगे गलती नहीं दोहरानी है। जो पाप आपने किया है, वो तो कर चुके हैं, उसको मन खोलकर आप हमको बता दीजिए; ताकि हम उसका निराकरण आपको बताएँ भी। हम करेंगे भी और आप से करवाएँगे भी। बेटे! जो गड्ढा खोदा है, उस गड्ढे को पाट। जब तक उस गड्ढे को नहीं पाटेगा, तब तक पापों का प्रायश्चित नहीं होता है। पापों का प्रायश्चित करना है, तो उस गड्ढे को पाटना है, जहाँ कि गड्ढा किया गया है।

उसके साथ क्या करेंगे? उसका एक ही विकल्प है कि जहाँ हमने गड्ढा किया है, उसका दूना हम पाटेंगे। पाटेंगे, तो उसका लाभ हमें यह होगा कि हम पाप से बच गए, नहीं तो हम गंगा जी में नहा भी आए, गंगा मैया की जय भी करते आए और गंगाजल पीते भी आए और दूसरे दिन फिर पाप करने लगे। अरे! आपने तो गंगा माता के ऊपर वजन चढ़ा दिया। गंगा माँ की उदारता देखी है, उसकी शीतलता देखी है, उसकी पवित्रता देखी है। उसने तो आपके पापों को धोया है और आप पाप चढ़ा भी आए और पुनः कर भी रहे हैं, तो पाप हटे

कहाँ हैं? हटे नहीं बेटे! हटाना है, तो उसके लिए शपथ लेनी है।

गुरुदेव से प्रेरणा लें

जैसा कि मैंने अभी आपसे निवेदन किया था और गुरुजी के बारे में यह कहा था कि जिस दिन से उन्होंने गायत्री माता का पल्ला पकड़ा, उस दिन से कोई भी उनकी निष्ठा को डिगा नहीं सका। उनकी आस्था को डिगा नहीं सका। जिस पथ पर वे चले, तो बड़े हिम्मत से चले ही। सारी दुनिया एक तरफ और वे एक तरफ। अंतरात्मा की उठी हुई आवाज से जिस दिन हम यह सोचते हैं और यह समझते हैं, संकल्प लेते हैं कि हमें अच्छाइयों की ओर चलना चाहिए, तो फिर कोई हमको रोकने वाला नहीं होता फिर दुनिया में कोई ऐसा पैदा नहीं हुआ है, जो हमको रोक सकता हो।

हमारे ऊपर अनुदानों और वरदानों की वर्षा होती रहती है, पर हम ऐसे दुर्भाग्यशाली हैं, जो सागर में रहते हैं पर "सागर में मीन प्यासी रे, मुझे सुन सुन आवे हाँसी रे।" अरे सागर में रह करके भी—समुद्र में रह करके भी मछली प्यासी है तो उस मछली को क्या कहेंगे? दुर्भाग्यशाली कहेंगे, जो ज्ञान के अथाह सागर के समीप ही बैठा रहा और जरा भी उसने ज्ञान का पान नहीं किया, तो उसके लिए क्या कहेंगे?

बेटे! उसको यही कहेंगे कि यह दुर्भाग्यशाली है। बेचारा है। बेचारा कहेंगे कि दुर्भाग्यशाली कहेंगे या संकीर्ण कहेंगे। ये कहेंगे कि आया भी और न संकीर्णता देकर गया, न अच्छाई लेकर गया। जैसा गलीज था, वैसा ही गलीज चला गया। बेटे! हमको भी बहुत दु:ख होगा, हमको परेशानी होगी, हमको हैरानी होगी, हमको कष्ट भी होगा और यह होगा कि हमारे दरवाजे पर आकर के हमने इतना कुछ किया, इतना ही उसको दिया। फिर भी यह ये भी नहीं कर सका कि अपनी संकीर्णता को भी छोड़ जाए।

इसके अंदर कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। हम समझ लेंगे की यह राक्षसी योनि का है, भले से मानव हो तो क्या? उसके अंदर जो भी हो तो क्या? लेकिन है वह राक्षस योनि में ही। यहाँ आ गया, पर उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है। एक तो अपनी सारी जिंदगी को गला रहा है और एक तरफ उसके ऊपर कोई असर नहीं पड़ रहा है, जिसको कि हम यह कहते हैं कि ये हमारे हैं।

पेड़ ने बेल को अपने तने से लिपटते देखा तो उसका स्वागत किया, परंतु बेल बोली—"देखना एक दिन तुमसे ऊपर निकल जाऊँगी।"

पेड़ बोला—"अपना कोई अपने से ऊपर जाता है तो बहुत प्रसन्नता होती है।" परंतु बेल का अहंकार पेड़ के प्रेम भरे शब्द सुनकर भी कम न हुआ। कुछ दिनों बाद राजा का रथ वहाँ से गुजरा तो पेड़ से लटकती बेल राजा के मुकुट में फँस गई। क्रोधित राजा ने बेल उखड़वा डाली।

पददलित बेल को अनुभव हुआ कि अहंकार कितना भी तेज उड़े, उसका अंत पतन से ही होता है।

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

बेटे! हम आपको यह कहते हैं कि ये हमारे बच्चे हैं, ये हमारे अनुयायी हैं, ये हमारे शिष्य हैं, तो क्या कहना है कि अधिकारी हैं? इतना ही अधिकार आपका बनता है कि जो कुछ भी गुरुजी-माताजी का है और जो कुछ भी गायत्री माता का है, वह सब समेटकर लिए चलें और हमें विश्व शांति के लिए, विश्व के लिए कोई कदम नहीं उठाना चाहिए? उठाना चाहिए। बेटे! हमको आपका कुछ नहीं चाहिए, आपका प्यार चाहिए।

बेटे! हमारे पास कुछ नहीं है, लेकिन एक दौलत है और वह है—हमारे प्यार की और हमारे स्नेह की, हमारे दुलार की, जो हर क्षण हमको गलाती रहती है। आपको मालूम नहीं है कि हर क्षण हम आग की तरह से कैसे धधकते रहते हैं और कहते हैं कि कोई है क्या? जो हमारे आग की चिनगारी को ले जाए? हम इनके लिए क्या मददगार हो सकते हैं? इनको हम कैसे शांति पहुँचा सकते हैं, कैसे इनको संतोष पहुँचा सकते हैं? किस तरीके से हम इनके काम में आएँ?

संस्कृति की पुकार सुनें

बेटे! हर समय हमारा यही चिंतन बना रहता है। आपका भी होना चाहिए कि आज एक राम पुकार रहा है और यह कह रहा है कि भटकी हुई हमारी भारतीय संस्कृति की सीता को पुनः लाने के लिए हमें वानर सेना की जरूरत है, जिसमें आप बैठे हैं।

कौन जाने आप में से कौन-सा हनुमान हो सकता है, कौन जाने आप में से नल और नील हो सकता है और कौन जाने आप इन बच्चियों में से हमारी गिलहरी हो सकती हैं? लेकिन हम ऐसे संकीर्ण, खुदगर्ज हैं, जो हम घर से बाहर नहीं निकलने देते।

घर से बाहर निकली और बस, इसकी चार आँखें ही जानें कि इसने क्या किया है? जैसे हम खुद हैं, वैसे ही हमने नारी को भी बना रखा है, जो कि त्याग की मूर्ति थी, समर्पण की मूर्ति थी; लेकिन उसके समर्पण को याद न करके न मालूम कहाँ भटक गई और जाने किसने बहका दिया। जाने किसने बरगला दिया कि इसमें यह कमी है। अमुक कमी है। इसका जिम्मेदार कौन है? आप इसके जिम्मेदार हैं। आप जिम्मेदार हैं कि आपने वो पोषण क्यों नहीं दिया। आपने वो प्यार क्यों नहीं दिया?

प्यार में मिलावट

आपने तो उस प्यार को भी बंद करके रख लिया। मैं तो यह भी कहती हूँ कि हर चीज में मिलावट है। आज की दुनिया में प्यार में भी मिलावट है। दूध में पानी, खाद्य पदार्थों में मिलावट और प्यार में मिलावट। प्यार रह गया, तो एक धुरी पर रह गया, जो ऐसा घिनौना है कि भगवान बचाए ऐसे प्यार से। ऐसे प्यार से तो बिना प्यार के ही भलाई है। वहीं एक जगह पर प्यार रह गया बस, और दुनिया में प्यार नाम की कोई चीज नहीं है।

यदि आपके अंदर प्यार होता, तो आपने अपनी पत्नी को ऐसे ही बना दिया होता, जैसे गुरुजी ने मुझे बना दिया है। बेटे! हाँ, मुझे बनाया गया है, इसमें कोई शक नहीं है, बनाया है, तो मेरे दो कदम आगे उठते हैं और न बनाया होता तो? तो मैं भी साधारण जैसी रही होती।

बेटा! मेरा भी समर्पण है कि मेरे खून की एक-एक बूँद इस मिशन के लिए, उनके लिए समर्पित है। हर समय हम कंधे-से-कंधा मिलाकर, पग-से-पग मिलाकर के ही चले। आपने कभी विचार किया है कि अपनी पत्नी को बनाना है, नहीं, आपने कभी नहीं किया। आपने हजार खामियाँ उसके लिए निकालीं। हमने यह भी कहा कि बेटे! घर में से इन महिलाओं को निकलने दो।

इक्कीसवीं शताब्दी नारीप्रधान होगी। इन नारियों को कुछ काम करने दीजिए, पर आपने तो डिब्बे में बंद करके रखा है। चौका-चूल्हे से आगे नहीं निकल सकतीं। दे बच्चे-दे बच्चे, बच्चों की फौज तो बढ़ा दी है।

उसके ऊपर मानसिक दबाव और शारीरिक दबाव, गृहस्थी का वजन, आपका खुद का वजन, आप तो जैसे साहबजादे हैं, तो आप बुरा मत मानना, बुरा मानेंगे, तो मान जाना।

नारियों को आगे बढ़ाएँ

अब आप जा ही रहे हैं, तो अपना दिल खोलकर बात ही क्यों न कह लूँ? कहनी चाहिए। मैं एक माँ हूँ, आप बच्चे हैं, तो मुझे कहनी चाहिए। आप तो उनमें से हैं, जो आप हजामत भी बनाएँगे, तो आपकी बीबी सेफ्टी रेजर धोकर भी रखेगी, उठाकर भी रखेगी। सारा काम करेगी, कपड़े भी रखेगी, धोएगी भी, आपकी सेवा भी करेगी। बच्चों को तमाचा मारती है, ठीक कर देती है और आप से कुछ कहने की भी हकदार नहीं है।

आपके सामने तो अपना मन खोलकर के भी रखने की कैसे हिम्मत करेगी? नहीं बेटे! आपको हम दबाव देकर कहते हैं कि नारियों को आगे आने दीजिए। उनको काम करने दीजिए। हम एक-एक महीने का प्रशिक्षण करेंगे और महिलाओं को यहाँ भेजिए और आप भी आइए। इनमें जितनी आस्तिकता है, उतनी नर में नहीं पाई जाती, जितनी नारियों में पाई जाती है। इनके अंदर त्याग है, इनके अंदर तप है। जिसके लिए कदम उठा लें, जो संकल्प कर लें, वह सारी जिंदगी उसका निर्वाह करती हैं। नर नहीं कर सकते।

भगवान न करे, किसी का आगे-पीछे होता है, तो बेटे! आँसू बहाती रहती है और गरीबी में भी अपने दिन काट लेती है। यदि पति नहीं रहता है, तो उसकी आत्मा के साथ वो सती हो जाती है, अंतिम क्षण तक, पर पीछे नहीं हटती और नर आज मरे कल दूसरी, वह मर जाए, तो तीसरी, बस, उसका तो यही ख्वाब चलता रहता है।

नहीं बेटे! हम यह तो नहीं कहते कि आप आरती उतारना, लेकिन इनके सम्मान की इतनी सुरक्षा होनी चाहिए कि कहाँ हम इनके साथ में कैसे सलूक करें? नम्रता का करें, जाहिलता का करें, तो जाहिलता का मत करिए, नम्रता का करिए। सब्जी में नमक ज्यादा पड़ गया है, तो कृपा करके उसमें पानी डाल दीजिए, पर आप थाली उठाकर मत मारिए। किसकी कमी है? आपकी कमी है।

बेटे! हमारे यहाँ तो गुरुजी का जब कभी काम खतम होता था, तो यह कहते कि लाओ! खाना। तो मैं यह कहती थी कि साहब! मुझे तो यह मालूम था कि अभी आधा घंटे बाद आप लेंगे, तो मैंने अभी नहीं तैयार किया है।

दोपहर की रोटी रखी है। तो क्या हुआ? मंगाराम के जो बिस्कुट होते हैं, तो ठंढे होते हैं कि गरम होते हैं। तो क्या हर्ज है? लाओ, वही लाओ। अरे सब्जी भी नहीं बनी है। सब्जी भी मैंने नहीं रखी, दोपहर ही सब साफ हो गई। अच्छा तो लाओ नमक तो है।

बेटे! ये दिल जीतने के सूत्र होते हैं। मैं आपको यह टेक्नीक बता रही हूँ, जो आपके स्वभाव में नहीं है, तो आप अपने स्वभाव में अंतर करके जाइए, आप बदलकर जाइए। आज बदलकर नहीं गए, तो कैसे मानें कि आपने अनुष्ठान किया और आप हमारे समीप रहे।

आप अपने अंदर जरा-सा भी परिवर्तन नहीं कर सकते हैं। आपने गलती की है, तो उस देवी से क्षमा माँगिए कि हमने जिंदगी में क्या भूल की है? अब आइंदा भूल नहीं होगी। आप मन-ही-मन

माँगिए, उससे नहीं माँगना है। फिर देखिए आपकी पत्नी आपके पीछे चलती है कि नहीं चलती। ऐसी गुलाम हो जाएगी कि आप तो फिर ऐसे कहेंगे की हम इसके बगैर जिंदा नहीं रह सकते हैं। अब वह आपके बगैर जिंदा नहीं रह सकती।

मैं आपको अनुभव की बात कह रही हूँ। मैं आपको ऐसी बात नहीं कह रही जो कि अव्यावहारिक है। व्यावहारिक बात कह रही हूँ। मेरे जिगर में नारी के प्रति बहुत आग है। वह इतनी दबाई और सताई गई है कि बस, आपसे क्या कहें?

नारी के उत्थान के लिए समर्पित गुरुदेव

बेटे! ऐसे ही गुरुजी का तो मुझसे भी ज्यादा है। उन्होंने एक पुस्तक लिखी है और पुस्तक लिखने के बाद दूसरे को पकड़ा दी। मैंने कहा— भाई! ऐसे देखना, कहीं ऐसा न समझ लें कि गुरुजी लड़कियों का बड़ा पक्षपात ले रहे हैं। उन्होंने कहा— कहीं से भाषा तो नहीं कड़ी हो गई। मैंने कहा हो जाने दीजिए, कम-से-कम इनको मालूम तो पड़े। इनके दिलों और दिमाग में तो आना चाहिए। होने दीजिए, भाषा कड़ी ही चलेगी। मैंने उस पुस्तक को देखा। मैंने कहा— नहीं इसकी भाषा बिलकुल नहीं बदलनी है, सौम्य नहीं करना है। यह तो ऐसे ही जाएगी।

बेटे! नारी के उत्थान के लिए, नारी को आगे बढ़ाने के लिए एक और बात मैं कहने वाली थी। वह ये कहने वाली थी कि आप यहाँ से यह संकल्प लेकर जाना कि हमें अपने बच्चों की शादी में दहेज नहीं लेना है। हमको आदर्श विवाह करना है। यह दहेज का राक्षस हमारी बेटियों को निगले जा रहा है। हमारी बहुओं को खाये जा रहा है, अखबार में आप रोज पढ़िए। पढ़ते रहिए–यहाँ हत्याएँ हो गईं, यहाँ मार डाला, यहाँ जहर दे दिया, यहाँ आग लगा दी। आप आएदिन नहीं सुनते।

आपके दिल में जरा भी असर नहीं पड़ता है, तो आप पाषाण हैं कि नहीं हैं? पाषाण हैं। यदि सहृदय हैं, तो आपको संकल्प लेना चाहिए कि हम इस दहेज के राक्षस को मिटाकर के रहेंगे। जो विकृतियाँ हैं, इनको हटाकर के रहेंगे, जिसमें हमारा मृत्युभोज भी है।

उधर हमारी आँख के आँसू नहीं सूखते, हमारा बेटा चला गया, पति चला गया, बाप चला गया और वह आ रहे हैं। कौन आ रहा है? यहाँ ब्राह्मण भोजन होगा। ब्राह्मण हैं कि राक्षस हैं? उनके मुँह में ग्रास कैसे चला जाता है कि माँ तो रो रही है और वे खा रहे हैं, वे मिष्टान्न खा रहे हैं, पूरी-पकौड़ी खा रहे हैं, ऐसी पूरी-पकौड़ी को धिक्कार है?

यह मृत्युभोज समाप्त होना चाहिए और जहाँ कहीं भी हो, तो कन्याभोजन करा दिया जाए। उसकी आत्मशांति के लिए यह करना चाहिए। उसकी सत्प्रवृत्तियों को फैलाने के लिए आप यह करिए। आपको जो कुछ दान-पुण्य करना है, तो उसमें लगाइए जो सार्थक हो, किसी गरीब को दे दीजिए।

ब्राह्मण जो ब्राह्मणोचित जीवन जिए

बेटे! आप किसी गरीब को ऊँचा उठाइए, उसको पढ़ाइए, उसको अच्छा साहित्य पढ़ाइए, जिससे उसको ज्ञान की प्राप्ति हो, लेकिन आप तो और गड्ढे में डालते चले जा रहे हैं। वे तो पेटू हैं। आज यहाँ खिला लो, दस बार खिला लो, उनका तो यही काम है। बेटे! मैं आप किसी को गाली तो नहीं देती, यह मत कहना कि अरे माताजी यह क्या कह रही हैं? ब्राह्मण हैं, तो ब्राह्मण हम भी बैठे हैं। हम अपनी कौम के लिए कह रहे हैं। हम अपने लिए कह रहे हैं।

बेटे! ब्राह्मण वह होता है, जो ब्राह्मणोचित जीवन जीता है। हमारी परिभाषा में उसको ब्राह्मण कहते हैं। कौम का ब्राह्मण हमारी निगाह में ब्राह्मण

नहीं है। ब्राह्मण वह है, जो लग्जरी से दिमाग को हटाकर के और सादा जीवन-उच्च विचार जिसके अंदर है, वह ब्राह्मण है, वह संत है। चूँकि वह दूसरों को देता है, दूसरों को उठाता है, अपना पेट काटता है और दूसरों को देता है, उसको ब्राह्मण कहेंगे, उसको हम संत कहेंगे।

श्रद्धा दीजिए

मैंने आपसे एक निवेदन यह किया था और कहा था कि आज भी भगवान राम की पुकार है कि हमारे जो अनुयायी हैं, जो हमको अपना माता-पिता समझते, गुरु समझते हैं, वे आएँ और इस संस्कृति की सीता को वापस लाने के लिए साहस के साथ कदम उठाएँ।

आपका पैसा हमको नहीं चाहिए। आप यह मत समझना कि माताजी आज यहाँ बैठी हैं, तो यह कहने के लिए बैठी हैं कि बेटे! जो तुम्हारे पास है, तो अपनी जेब खाली कर जा। नहीं बेटे! हमें नहीं चाहिए। आपका पैसा आपके लिए मुबारक रहे; लेकिन हमें तो आपकी श्रद्धा चाहिए। श्रद्धा देकर जाइए।

आप अपनी निष्ठा देकर जाइए, आप अपना समय देकर के जाइए, आप अपना श्रम देकर जाइए। आप घर में से निकलिए और काम करिए। जिस मिशन का आपके ऊपर कर्ज है, आप गुरु के ऋणी हैं, आप समाज के ऋणी हैं, आप राष्ट्र के ऋणी हैं। आप विश्व के ऋणी हैं।

सारा विश्व आज पुकार रहा है। अरे! कुछ नहीं है, संकीर्ण हो, तो अपना प्यार तो दे जाओ। अपना प्यार दे जाओगे, तो बहुत कुछ ले जाओगे। प्यार आपने दे दिया और श्रद्धा आपने दे दी, फिर तो बाकी का सबसे उत्तम हम कर पाएँगे। अरे! आपने यह क्या कह दिया? हम तो यह अनुदान लेने आए थे कि गुरुजी के पास जो शक्ति होगी, वह हमको मिलेगी तो अभी आपको यह भान नहीं हुआ कि आपको शक्ति नहीं मिली। बेटा! आपको सब शक्ति मिल गई, आप समझते क्यों नहीं? आप समझिए।

बेटे! गुरुजी को किसने जाना है? मैं समझती हूँ कि अभी किसी ने नहीं जाना है। भगवान जाने हम सौभाग्यशाली हैं कि दुर्भाग्यशाली हैं, कह नहीं सकते बेटे! यदि हम सौभाग्यशाली होंगे, तो उन्होंने हमारे हृदय को छुआ होगा। हमारे केवल शरीर को किसी ने छुआ, चरणस्पर्श किए हैं; लेकिन हमारे हृदय को नहीं छुआ है। हृदय को जिस दिन कोई भी छू लेगा, वह विवेकानंद हुए बगैर नहीं मानेगा और वह शिवाजी हुए बगैर नहीं मानेगा।

चंद्रमा समुद्र की ओर देखते हुए बोला— ''आपने सारी नदियों का जल अपने में समेट लिया, तब भी आपको संतोष नहीं हुआ।''

समुद्र गंभीर स्वर में बोला—''ऐसा न कहें देव! यदि अनावश्यक को लेकर संसार में जल-वृष्टि का उत्तरदायित्व पूर्ण न करूँ तो यह सृष्टि कैसे चले?'' चंद्रमा को अपनी भूल का भान हो गया।

बेटे! यदि उसने हमारा हृदय छुआ होगा, तो वह अर्जुन हुए बगैर नहीं मानेगा। अर्जुन अपने सांसारिक संबंधों के लिए कह रहा था। अरे लड़ूँ या न लड़ूँ? ये तो मेरे भाई हैं, यह तो मेरा भतीजा मर जाएगा, ये तो मेरे चाचा-ताऊ मर जाएँगे, यह तो मेरा बाबा मर जाएगा। कृष्ण ने कहा—चल हट। खड़ा हो। खड़ा नहीं होगा? गांडीव लेकर खड़ा हो, लड़ना है। एक जीवन-संग्राम में आपको भी लड़ना है। जीवन-संग्राम में लड़िए और अर्जुन के तरीके से आप संकल्प लेकर जिस दिन तैयार हो जाएँगे, आपकी संकल्प शक्ति जिस दिन जागेगी; उस दिन अनुदानों से आपकी झोली भरी हुई मिलेगी, आप समझते क्यों नहीं? **(क्रमशः अगले अंक में समापन)**

वसुधैव कुटुम्बकम् के निनाद से गूँजा विश्वविद्यालय

पूज्य गुरुदेव ने कहा है कि—'**वसुधैव कुटुम्बकम्**' का आदर्श सामने रखकर विश्व की पुनः संरचना की जाए। परायापन ही दृष्टिगोचर न हो। सारा विश्व अपना घर-परिवार प्रतीत हो और भाषा, देश, धर्म, संस्कृति जैसे आधारों को पृथकतावादी प्रवृत्ति पनपाने से विरत कर दिया जाए। समता का वातावरण उत्पन्न करना, वैसी परिस्थितियों का सृजन, नवनिर्माण आंदोलन का लक्ष्य है।

जनमानस का भावनात्मक नवनिर्माण इसी आधार पर किया जा रहा है कि उसमें निम्नांकित चार तथ्यों को अंगीकार करने में तनिक भी अड़चन अनुभव न हो। (1) शुचिता (2) ममता, ये दो व्यक्ति निर्माण के आधार हैं और (3) एकता (4) समता, समाज निर्माण के; इन्हीं चार आधारों को क्रियान्वित करने के लिए युग निर्माण योजना की गतिविधियों को केंद्रित माना जाना चाहिए।

पूज्यवर आगे कहते हैं कि भावनात्मक नव-निर्माण का प्रथम आधार है—शुचिता। शुचिता का अर्थ है पवित्रता। युग निर्माण का दूसरा आधार है—ममता। ममता अर्थात अपनापन। इस संसार में जो कुछ है सो सब हमारा है, यह भावना आत्मविस्तार की यथार्थ प्रगति का परिचय देती है।

एकता का अर्थ है—बिखराव की प्रवृत्ति को दूर कर केंद्रीकरण की दिशा में अग्रसर होना। नवयुग निर्माण का चौथा आधार है—समता। मनुष्य और मनुष्य के बीच न्यूनतम अंतर रहने दिया जाए। सभी को एक जैसी स्थिति में रहने का अवसर मिले। इससे न किसी का अहंकार बढ़ेगा, न ईर्ष्या।

पूज्य गुरुदेव के इन्हीं युगांतरकारी वचनों को अक्षरशः सत्य एवं साकार करने के अभियान में देव संस्कृति विश्वविद्यालय जुटा हुआ है। जिस क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय व्याख्यानमाला के अंतर्गत राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सरसंघचालक आदरणीय श्री मोहन भागवत जी का देव संस्कृति विश्वविद्यालय आगमन हुआ।

आगमन पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी एवं वरिष्ठ अधिकारी गणों द्वारा उनका स्वागत किया गया। अपने एक दिवसीय प्रवास के अंतर्गत आदरणीय श्री भागवत जी ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय की समग्र दिव्य दिनचर्या का अनुपालन किया। सावन के अंतिम सोमवार में प्रातः सर्वप्रथम रुद्राभिषेक का क्रम प्रज्ञेश्वर महाकाल मंदिर में संपन्न करने के साथ ही मंदिर परिसर में श्वेत चंदन का पौधारोपण भी किया।

इसके पश्चात उन्होंने श्रीराम स्मृति उपवन पहुँचकर स्वास्थ्य लाभ लिया। देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर के परिभ्रमण के अंतर्गत उन्होंने बाल्टिक संस्कृति एवं अध्ययन केंद्र एवं स्वावलंबन केंद्र का भी भ्रमण किया एवं वहाँ संचालित विभिन्न गतिविधियों की सराहना भी की।

पूज्य गुरुदेव द्वारा स्थापित गायत्री विद्यापीठ के नन्हे विद्यार्थियों से भी वे मिलने विद्यालय पहुँचे। मृत्युंजय सभागार में आयोजित कार्यक्रम से पूर्व उन्होंने शौर्य दीवार पर पुष्प अर्पण कर वीर सपूतों को नमन किया। तत्पश्चात मृत्युंजय सभागार पहुँचकर वसुधैव कुटुंबकम् (एक पृथ्वी, एक

परिवार, एक भविष्य) कार्यक्रम का शुभारंभ दीप प्रज्वलन के माध्यम से किया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के आदरणीय कुलपति शरद पारधी जी तथा प्रतिकुलपति जी ने आदरणीय मोहन भागवत जी का गायत्री मंत्र चादर देकर सम्मान किया। कार्यक्रम के दौरान आदरणीय श्री मोहन भागवत जी ने पूज्य गुरुदेव द्वारा दिए वसुधैव कुटुंबकम् (एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य) की सर्वमान्य धारणा एवं उससे होने वाले सर्वकल्याण की बात को प्रकाशित किया। सभागार में अखिल विश्व गायत्री परिवार यजन ऐप को लॉन्च करने के साथ ही इन्स्टीट्यूट ऑफ आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का भी विमोचन हुआ। कार्यक्रम के अंत में आदरणीय श्री मोहन भागवत जी को स्मृतिचिह्न देकर सम्मानित किया गया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के व्याख्यानमाला एवं भारत को जी20 की अध्यक्षता के अंतर्गत देश के 60 से ज्यादा अलग-अलग शहरों में विभिन्न कार्यक्रमों के आयोजन के साथ ही हरिद्वार स्थित, जीवन-विद्या का आलोक केंद्र देव संस्कृति विश्वविद्यालय में भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष माननीय श्री जगत प्रकाश नड्डा जी, उत्तराखंड के माननीय मुख्यमंत्री श्री पुष्कर सिंह धामी जी के साथ प्रदेश के अनेक गणमान्यों का देव संस्कृति विश्वविद्यालय आगमन हुआ। आगमन के पश्चात सभी गणमान्य जनों का स्वागत प्रतिकुलपति जी ने परमपूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी के आशीर्वादस्वरूप मंत्र चादर एवं पुष्प-गुच्छ देकर किया।

विशिष्ट अतिथियों ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में स्थित प्रज्ञेश्वर महादेव मंदिर का दर्शन कर, राष्ट्र के वीर सपूतों को समर्पित शौर्य दीवार पर श्रद्धांजली अर्पित की। इस विशेष अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मृत्युंजय सभागार में वसुधैव कुटुम्बकम् (एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य) विषय पर आधारित विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

इस कार्यक्रम में माननीय राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री जगत प्रकाश नड्डा जी एवं उनकी धर्मपत्नी, उत्तराखंड के माननीय मुख्यमंत्री श्री पुष्कर सिंह धामी जी, उत्तराखंड राज्य के अध्यक्ष, माननीय प्रदेश प्रभारी, पूर्व केंद्रीय मंत्री समेत कई गणमान्य मौजूद रहे।

कार्यक्रम की शुरुआत दीप प्रज्वलन, पूज्य गुरुदेव, वंदनीया माताजी एवं माँ गायत्री को पुष्प अर्पित कर कुलगीत के माध्यम से की गई। इसके पश्चात प्रतिकुलपति जी ने किस प्रकार भारतीय संस्कृति सदैव वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना के साथ सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक पुनरुत्थान की ओर अग्रसित हो रही है विषय पर प्रकाश डाला।

कार्यक्रम के अगले क्रम में माननीय मुख्यमंत्री जी ने भारत के जी-20 की अध्यक्षता को गौरव का विषय मानते हुए सारे गणमान्यों को संबोधित किया। इसके पश्चात माननीय श्री नड्डा जी ने सावन माह में अपने शांतिकुंज आगमन पर गौरव एवं शांति का अनुभव करते हुए अपने जीवन की अनेक अविस्मरणीय यादों को सबके समक्ष रखा।

विदित हो कि गायत्री तीर्थ शांतिकुंज एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आदरणीय नड्डा जी का यह प्रथम बार आगमन नहीं था। कई वर्षों के बाद सावन माह के पावन अवसर पर उनके शांतिकुंज आगमन से आध्यात्मिक रूप से आंतरिक उल्लास का वे अनुभव कर रहे थे। ज्ञात हो कि वे कई वर्षों से पूज्य गुरुदेव के विचारों का अनुपालन कर रहे हैं।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में कार्यक्रमों की शृंखला में हाल ही में उन्नयन के कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी पधारे। कार्यक्रम की शुरुआत पूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी के समक्ष दीप प्रज्वलन के माध्यम से हुई। ज्ञात हो कि उन्नयन कार्यक्रम देव संस्कृति विश्वविद्यालय की वह पुनीत परंपरा है, जिसमें नए प्रवेशित छात्र-छात्राओं का स्वागत किया जाता है। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम किया गया, जिसमें प्रज्ञागीत पर समूह नृत्य, पूज्य गुरुदेव के विचारों पर आधारित लघु नाटिका जैसे अनेकों सांस्कृतिक कार्यक्रम किए गए।

कार्यक्रम में आए सभी संकायाध्यक्ष, विभागाध्यक्ष, अधिकारीगण, आचार्यगण, नवप्रवेशी छात्र-छात्राओं एवं पूर्व से अध्ययनरत सभी छात्र-छात्राओं को संबोधित करते हुए प्रतिकुलपति जी ने कहा कि विद्यार्थियों द्वारा यह प्रस्तुति अलौकिक एवं अविश्वसनीय है। इसके लिए संबंधित विभाग एवं प्रतिभाग किए सभी विद्यार्थियों की मैं सराहना करता हूँ। पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी का आशीर्वाद सदैव आप सभी पर बना रहे, ऐसी कामना करता हूँ।

इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में गोस्वामी तुलसीदास जी की जयंती के उपलक्ष्य में शिक्षाशास्त्र विभाग द्वारा एक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि के रूप में प्रतिकुलपति जी पधारे। इस पूरे कार्यक्रम में गोस्वामी तुलसीदास जी की जीवनी पर प्रकाश डाला गया। कार्यक्रम में शिक्षाशास्त्र विभाग के संकाय अध्यक्ष, विभागाध्यक्ष, आचार्यगण एवं विद्यार्थी मौजूद रहे।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में विश्व फोटोग्राफी दिवस के अवसर पर पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग द्वारा 19 अगस्त, 2023 को लेंस-ए-उत्कर्ष फोटोग्राफी प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि के रूप में प्रतिकुलपति जी पधारे व साथ ही उन्होंने विजयी प्रतिभागियों को पुरस्कृत भी किया।

अपने संबोधन में प्रतिकुलपति जी ने प्रतिभागियों की रचनात्मकता की सराहना करते हुए कार्यक्रम के सफल आयोजन पर शुभकामनाएँ दीं। इस अवसर पर संबंधित संकाय के सभी विभागाध्यक्ष, शिक्षकगण एवं छात्र-छात्राएँ मौजूद रहे।

हम सभी भारतवासी आजादी की 77वीं वर्षगाँठ को इस वर्ष आजादी के अमृत महोत्सव के रूप में मना रहे हैं। भारत के राजनीतिक जीवन के मंगलमय स्वर्णिम राष्ट्रीय पर्व के रूप में हम 15 अगस्त को सदैव याद करते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में दिनांक 15 अगस्त, 2023 को स्वतंत्रता दिवस के उपलक्ष्य में ध्वजारोहण का कार्यक्रम मुख्य अतिथि परमश्रद्धेया शैल जीजी, आदरणीय कुलपति महोदय श्री शरद पारधी जी एवं प्रतिकुलपति जी की गरिमामयी उपस्थिति एवं उनके करकमलों द्वारा संपूर्ण आस्था, श्रद्धा एवं सम्मान के साथ पूज्य गुरुदेव की विराट प्रतिमा के सामने किया गया।

इस अवसर पर विश्वविद्यालय के सभी संकायाध्यक्ष, विभागाध्यक्ष, अधिकारीगण, आचार्यगण एवं छात्र-छात्राएँ उपस्थित रहे। ध्वजारोहण के पश्चात विद्यार्थियों एवं विश्वविद्यालय के समस्त स्टाफ सदस्यों द्वारा हर घर तिरंगा अभियान के अंतर्गत परिसर में रैली निकाली गई। 77वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर समस्त विद्यार्थियों के लिए त्वरित भाषण, स्वरचित

कविता, महापुरुषों के संस्मरण, कबड्डी एवं बैडमिंटन प्रतियोगिताएँ भी आयोजित कराई गईं। जिनमें अनेक विद्यार्थियों ने अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित किया।

दिनांक 14 अगस्त, 2023 को देव संस्कृति विश्वविद्यालय में 'विभाजन विभीषिका स्मृति दिवस' के उपलक्ष्य में एक प्रदर्शनी का उद्घाटन आदरणीय कुलपति महोदय श्री शरद पारधी जी, प्रतिकुलपति जी एवं आदरणीय कुलसचिव महोदय द्वारा किया गया।

प्रतिकुलपति जी ने भारत के विभाजन-विभीषिका से सभी को अवगत कराया। उन्होंने बताया कि आज ढेर सारे लोग सम्मान, स्वार्थ और अपनी स्मृतियाँ बनाने के लिए किसी भी हद को पार कर जा रहे हैं।

देश के इस विभाजन में न जाने कितने परिवारों ने अपनों को खोया था और न जाने कितने वीर सपूतों ने अपने प्राणों की आहुति भी दी थी, जिनको भुलाया नहीं जा सकता है। इससे बड़ा दुर्भाग्य और कुछ हो नहीं सकता है। इसलिए आज के इस विशेष दिन हम सभी को एक भाव से भारत माँ एवं भारतीय संस्कृति के लिए कार्य करना होगा। इस विशेष अवसर पर विश्वविद्यालय के आचार्य एवं विद्यार्थीगण उपस्थित रहे।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में साइबर सिक्योरिटी और डिजिटल पेमेंट सिस्टम के तहत एक कार्यशाला का भी आयोजन किया गया। इस कार्यशाला का आयोजन भारतीय कौशल विकास संस्थान के साथ मिलकर किया गया, जिसमें लगभग 250 से अधिक विद्यार्थियों एवं 15 से अधिक शिक्षकों ने सहभाग किया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रांगण में विशिष्ट अतिथियों के आगमन के क्रम में विश्व हिंदू परिषद् के उपाध्यक्ष व श्रीराम जन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र के महासचिव आदरणीय श्री चंपतराय जी का आगमन हुआ। उन्होंने देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी के साथ भेंटवार्त्ता की व साथ ही श्रीराम मंदिर की प्राण-प्रतिष्ठा के दिन पधारने का आमंत्रण भी दिया, जिसे प्रतिकुलपति जी ने सहर्ष स्वीकार किया।

विविध आदिवासी समूहों का घर एवं धान का कटोरा कहे जाने वाले छत्तीसगढ़ प्रदेश के राज्यमंत्री माननीय श्री मोहन मरकाम जी का देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में आगमन हुआ। माननीय श्री मोहन मरकाम जी का स्वागत प्रतिकुलपति जी द्वारा गायत्री मंत्र चादर देकर किया गया।

भेंटवार्त्ता के दौरान माननीय मंत्री जी को शांतिकुंज एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय में चल रही सृजनात्मक गतिविधियों से भी अवगत कराया गया। सभी गतिविधियों को जानकर माननीय मंत्री जी ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

नेपाल के काठमांडू से कैप्टन श्री रामेश्वर थापा जी एवं प्रवासी नेपाल संघ के संस्थापक श्री उपेंद्र महतो जी का भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आगमन हुआ। आगमन के पश्चात विशिष्ट अतिथियों से आदरणीय कुलपति श्री शरद पारधी जी ने भेंट की। भेंटवार्त्ता के दौरान आदरणीय कुलपति महोदय ने अखिल विश्व गायत्री परिवार एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय की सृजनात्मक एवं रचनात्मक गतिविधियों से परिचित कराया।

शिक्षा एवं शोध के क्षेत्र में विशिष्टताओं के परस्पर आदान-प्रदान से संस्कृति के विस्तार एवं समाज की सेवा के उद्देश्य से इंडोनेशिया के पलंगका राया शहर में प्रतिष्ठित संस्थान अगामा हिंदू नेगेरी टैम्पुंग पेनयांग का देव

संस्कृति विश्वविद्यालय हरिद्वार के साथ अनुबंध हुआ।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय से प्रतिकुलपति एवं अगामा हिंदू नेगेरी टैम्पुंग पेनयांग संस्थान से कुलपति डॉ० मुजियोनो ने इस अनुबंध पर हस्ताक्षर किए। इंडोनेशिया बाली के आश्रम गांधी पुरी के संस्थापक पद्मश्री अगस इंद्र उदयन एवं बाली के प्रमुख संसद सदस्य श्री पुतु पर्वत भी इस अवसर पर उपस्थित रहे।

इसी के साथ ही उच्च शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार एवं करियर पॉइंट यूनिवर्सिटी, हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश के बीच भी अनुबंध पर हस्ताक्षर हुआ। इस अनुबंध के तहत दोनों विश्वविद्यालय एक साथ कई महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में सहयोग और विकास का काम करेंगे। यह अनुबंध देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी एवं करियर पॉइंट यूनिवर्सिटी के माननीय कुलपति डॉ० संजीव कुमार जी की उपस्थिति में संपन्न हुआ। इस अनुबंध के तहत दोनों विश्वविद्यालय अपनी विशेषज्ञता के क्षेत्रों में सहयोग, अनुसंधान, शिक्षा और सामाजिक क्षेत्रों में गहनता के साथ सहयोग का काम करेंगे।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा अर्जित उपलब्धियों के क्रम में विद्यार्थी आयुषी आर्य ने 17वें ऑल इंडिया इंडिपेंडेंस कप अंतरराष्ट्रीय कराटे चैंपियनशिप-2023 में कांस्य पदक जीता। यह चैम्पियनशिप 11 से 13 अगस्त, 2023 को नई दिल्ली के तालकटोरा स्टेडियम में आयोजित की गई थी। प्रतिकुलपति जी ने आयुषी को इस शुभ अवसर पर शुभकामनाएँ एवं पूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी का आशीर्वाद प्रदान किया। ❑

एक व्यक्ति के मरने का समय आया तो देवदूत उसे लेने पहुँचे। व्यक्ति ने जीवन में पुण्य भी किए थे और पाप भी। इसलिए देवदूत उसे एक पुस्तक हाथ में देते हुए बोले—"तुम्हारे पुण्यकर्मों के बदले यह पुस्तक तुम्हें देते हैं। ये नियति की पुस्तक है, इसमें सारे प्राणियों का भाग्य लिखा है, तुम चाहो तो इसमें कोई भी एक परिवर्तन अपने पुण्यकर्मों के बदले में कर सकते हो।"

उस व्यक्ति ने पुस्तक के पन्ने पलटने प्रारंभ किए तो उसमें अपना पन्ना देखने से पूर्व वह दूसरों के भाग्य के पन्ने पढ़ने लगा। जब उसने अपने पड़ोसियों के भाग्य के पन्ने देखे तो उनका भाग्य देखकर उसका मन विद्वेष से भर उठा। वह मन-ही-मन बोला—"मैं कभी इन लोगों को इतना सुखी नहीं होने दूँगा और क्रोध में भरकर वह उनके पन्नों में फेर-बदल करने लगा।"

देवदूतों के द्वारा दिए गए निर्देश के अनुसार, परिवर्तन एक ही बार किया जा सकता था। अतः जैसे ही उसने एक बदलाव किया, देवदूत ने वह पुस्तक उसके हाथ से ले ली। अब वह व्यक्ति बहुत पछताया; क्योंकि यदि वह चाहता तो अपनी नियति में सुधार कर सकता था, पर ईर्ष्या के वशीभूत होकर वह दूसरों की नियति बिगाड़ने में लग गया और यह अवसर गँवा बैठा। मनुष्य ऐसे ही जीवन में आए बहुमूल्य अवसरों को व्यर्थ गँवा देता है।

धरती में प्रकाश-अवतरण की प्रक्रिया

युग-परिवर्तन महाकाल का शिव संकल्प है। यह सुनिश्चित है, परंतु आसुरी शक्तियाँ इसे विफल करने में लगी हुई हैं। अहंकारी आसुरी शक्तियाँ बड़ी योजनाबद्ध रीति से संस्कृति व संस्कारों को विकृत करने में लगी हैं। वे आर्य संस्कृति को असुर संस्कृति में रूपांतरित करने की बड़ी कलुषित व कुत्सित कोशिश कर रही हैं। कुछ अंशों में वह सफल भी रही हैं। वे विद्वान, बुद्धिमान, प्रज्ञावान एवं प्रखर प्रतिभावानों की सामर्थ्य का भरपूर दुरुपयोग कर रही हैं।

अधर्म की शक्तियों ने तो स्वयं को संगठित एवं व्यूहबद्ध कर लिया है। बारी अब धर्म की शक्तियों की है। उन्हें भी संगठित होकर व्यवस्थित होना चाहिए। धर्म की स्थापना अवश्यंभावी है। समय आ पहुँचा है, जब सभी को युग-परिवर्तन की इस महावेला से परिचित कराया जाए। सभी धर्मानुरागियों में अपने कर्त्तव्य व युगधर्म का बोध होना आवश्यक है।

भगवान महाकाल के अवतार कार्य में सहयोगी बनने के लिए नेह-निमंत्रण देने का समय आ गया है। यह देवकार्य है, ऋषिकार्य है, युगधर्म है। धर्म का, धर्म की पक्षधर शक्तियों का संगठित होना सर्वथा उचित है, पर इसके लिए धर्म की चेतना का परिष्कार आवश्यक है। वर्तमान का धर्म तो रूढ़ियों, कुरीतियों एवं मूढ़ताओं से आच्छादित है।

आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि धर्म इस कलुष-कालिमा वाले आच्छादन से मुक्त हो। इसी के साथ यथार्थ व परिष्कृत धार्मिक चेतना को परिभाषित करने वाला सुविचार जरूरी है। इसकी युगानुकूल व्याख्या व इसके प्रचार की जरूरत है। ऐसा होने पर ही युगधर्म का युगबोध होगा।

इस युगबोध को जो समझेंगे, वे संगठित भी हो सकेंगे। संगठन जीवंत व गतिशील बना रहे, इसके लिए आवश्यक एवं समुचित क्रियाकलाप भी अपनाने होंगे। अहंकारी असुर—तप में व विद्या में किसी से भी कम नहीं हैं। वे सब निरंतर तप करते हुए अपने को समर्थ बनाते हैं। इसी के साथ नित्य-नियमित अमोघ व अचूक विद्याओं का अनुसंधान करते रहते हैं।

सामान्य जन तो तपोनिष्ठ, विद्याओं के अनुसंधान में अग्रणी असुरों को देखकर भ्रमित हो जाते हैं। वे उन्हें अध्यात्मवेत्ता मानने की भूल कर बैठते हैं, पर ज्ञानीजन जानते हैं कि बाहरी तौर पर असुर कैसे भी और कुछ भी क्यों न दिखें, पर वास्तविकता में कभी भी अध्यात्मवेत्ता नहीं हो सकते।

असुरों का आधार अभिमान है; जबकि आध्यात्मिक साधकों का केंद्रीय तत्त्व विवेक है, उनकी परिष्कृत भावनाओं से उपजी भक्ति है। इनमें एक प्रमुख अंतर और भी है। असुर, प्रकृति के नियमों, शक्तियों, इसके सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म अंतर-प्रत्यंतरों तथा आरोह-अवरोहों से सुपरिचित होते हैं, लेकिन ये सब मिलकर परमात्मा की करुणा से अपरिचित बने रहते हैं।

इसी के साथ वे यह भी भूल जाते हैं कि प्रकृति के जिस स्वरूप से उनका परिचय है, जिसकी शक्तियों को पाकर वे दंभ से भर इतरा रहे हैं, वे तो

संस्कृति विश्वविद्यालय हरिद्वार के साथ अनुबंध हुआ।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय से प्रतिकुलपति एवं अगामा हिंदू नेगेरी टैम्पुंग पेनयांग संस्थान से कुलपति डॉ० मुजियोनो ने इस अनुबंध पर हस्ताक्षर किए। इंडोनेशिया बाली के आश्रम गांधी पुरी के संस्थापक पद्मश्री अगस इंद्र उदयन एवं बाली के प्रमुख संसद सदस्य श्री पुतु पर्वत भी इस अवसर पर उपस्थित रहे।

इसी के साथ ही उच्च शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार एवं करियर पॉइंट यूनिवर्सिटी, हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश के बीच भी अनुबंध पर हस्ताक्षर हुआ। इस अनुबंध के तहत दोनों विश्वविद्यालय एक साथ कई महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में सहयोग और विकास का काम करेंगे। यह अनुबंध देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी एवं करियर पॉइंट यूनिवर्सिटी के माननीय कुलपति डॉ० संजीव कुमार जी की उपस्थिति में संपन्न हुआ। इस अनुबंध के तहत दोनों विश्वविद्यालय अपनी विशेषज्ञता के क्षेत्रों में सहयोग, अनुसंधान, शिक्षा और सामाजिक क्षेत्रों में गहनता के साथ सहयोग का काम करेंगे।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा अर्जित उपलब्धियों के क्रम में विद्यार्थी आयुषी आर्य ने 17वें ऑल इंडिया इंडिपेंडेंस कप अंतरराष्ट्रीय कराटे चैंपियनशिप-2023 में कांस्य पदक जीता। यह चैम्पियनशिप 11 से 13 अगस्त, 2023 को नई दिल्ली के तालकटोरा स्टेडियम में आयोजित की गई थी। प्रतिकुलपति जी ने आयुषी को इस शुभ अवसर पर शुभकामनाएँ एवं पूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी का आशीर्वाद प्रदान किया। ❑

एक व्यक्ति के मरने का समय आया तो देवदूत उसे लेने पहुँचे। व्यक्ति ने जीवन में पुण्य भी किए थे और पाप भी। इसलिए देवदूत उसे एक पुस्तक हाथ में देते हुए बोले—"तुम्हारे पुण्यकर्मों के बदले यह पुस्तक तुम्हें देते हैं। ये नियति की पुस्तक है, इसमें सारे प्राणियों का भाग्य लिखा है, तुम चाहो तो इसमें कोई भी एक परिवर्तन अपने पुण्यकर्मों के बदले में कर सकते हो।"

उस व्यक्ति ने पुस्तक के पन्ने पलटने प्रारंभ किए तो उसमें अपना पन्ना देखने से पूर्व वह दूसरों के भाग्य के पन्ने पढ़ने लगा। जब उसने अपने पड़ोसियों के भाग्य के पन्ने देखे तो उनका भाग्य देखकर उसका मन विद्वेष से भर उठा। वह मन-ही-मन बोला—"मैं कभी इन लोगों को इतना सुखी नहीं होने दूँगा और क्रोध में भरकर वह उनके पन्नों में फेर-बदल करने लगा।"

देवदूतों के द्वारा दिए गए निर्देश के अनुसार, परिवर्तन एक ही बार किया जा सकता था। अतः जैसे ही उसने एक बदलाव किया, देवदूत ने वह पुस्तक उसके हाथ से ले ली। अब वह व्यक्ति बहुत पछताया; क्योंकि यदि वह चाहता तो अपनी नियति में सुधार कर सकता था, पर ईर्ष्या के वशीभूत होकर वह दूसरों की नियति बिगाड़ने में लग गया और यह अवसर गँवा बैठा। मनुष्य ऐसे ही जीवन में आए बहुमूल्य अवसरों को व्यर्थ गँवा देता है।

धरती में प्रकाश-अवतरण की प्रक्रिया

युग-परिवर्तन महाकाल का शिव संकल्प है। यह सुनिश्चित है, परंतु आसुरी शक्तियाँ इसे विफल करने में लगी हुई हैं। अहंकारी आसुरी शक्तियाँ बड़ी योजनाबद्ध रीति से संस्कृति व संस्कारों को विकृत करने में लगी हैं। वे आर्य संस्कृति को असुर संस्कृति में रूपांतरित करने की बड़ी कलुषित व कुत्सित कोशिश कर रही हैं। कुछ अंशों में वह सफल भी रही हैं। वे विद्वान, बुद्धिमान, प्रज्ञावान एवं प्रखर प्रतिभावानों की सामर्थ्य का भरपूर दुरुपयोग कर रही हैं।

अधर्म की शक्तियों ने तो स्वयं को संगठित एवं व्यूहबद्ध कर लिया है। बारी अब धर्म की शक्तियों की है। उन्हें भी संगठित होकर व्यवस्थित होना चाहिए। धर्म की स्थापना अवश्यंभावी है। समय आ पहुँचा है, जब सभी को युग-परिवर्तन की इस महावेला से परिचित कराया जाए। सभी धर्मानुरागियों में अपने कर्त्तव्य व युगधर्म का बोध होना आवश्यक है।

भगवान महाकाल के अवतार कार्य में सहयोगी बनने के लिए नेह-निमंत्रण देने का समय आ गया है। यह देवकार्य है, ऋषिकार्य है, युगधर्म है। धर्म का, धर्म की पक्षधर शक्तियों का संगठित होना सर्वथा उचित है, पर इसके लिए धर्म की चेतना का परिष्कार आवश्यक है। वर्तमान का धर्म तो रूढ़ियों, कुरीतियों एवं मूढ़ताओं से आच्छादित है।

आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि धर्म इस कलुष-कालिमा वाले आच्छादन से मुक्त हो। इसी के साथ यथार्थ व परिष्कृत धार्मिक चेतना को परिभाषित करने वाला सुविचार जरूरी है। इसकी युगानुकूल व्याख्या व इसके प्रचार की जरूरत है। ऐसा होने पर ही युगधर्म का युगबोध होगा।

इस युगबोध को जो समझेंगे, वे संगठित भी हो सकेंगे। संगठन जीवंत व गतिशील बना रहे, इसके लिए आवश्यक एवं समुचित क्रियाकलाप भी अपनाने होंगे। अहंकारी असुर—तप में व विद्या में किसी से भी कम नहीं हैं। वे सब निरंतर तप करते हुए अपने को समर्थ बनाते हैं। इसी के साथ नित्य-नियमित अमोघ व अचूक विद्याओं का अनुसंधान करते रहते हैं।

सामान्य जन तो तपोनिष्ठ, विद्याओं के अनुसंधान में अग्रणी असुरों को देखकर भ्रमित हो जाते हैं। वे उन्हें अध्यात्मवेत्ता मानने की भूल कर बैठते हैं, पर ज्ञानीजन जानते हैं कि बाहरी तौर पर असुर कैसे भी और कुछ भी क्यों न दिखें, पर वास्तविकता में कभी भी अध्यात्मवेत्ता नहीं हो सकते।

असुरों का आधार अभिमान है; जबकि आध्यात्मिक साधकों का केंद्रीय तत्त्व विवेक है, उनकी परिष्कृत भावनाओं से उपजी भक्ति है। इनमें एक प्रमुख अंतर और भी है। असुर, प्रकृति के नियमों, शक्तियों, इसके सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म अंतर-प्रत्यंतरों तथा आरोह-अवरोहों से सुपरिचित होते हैं, लेकिन ये सब मिलकर परमात्मा की करुणा से अपरिचित बने रहते हैं।

इसी के साथ वे यह भी भूल जाते हैं कि प्रकृति के जिस स्वरूप से उनका परिचय है, जिसकी शक्तियों को पाकर वे दंभ से भर इतरा रहे हैं, वे तो

बस, परमात्मा की भुवनमोहिनी माया हैं। भगवती मूल प्रकृति का बस, एक मायिक रूप हैं।

उनका यथार्थ रूप तो जगन्माता का है, जो ज्ञानमयी, करुणामयी व वरदायिनी हैं। अब वह क्षण आ गया है, जब भगवान महाकाल के लीलासहचरों को असुरों की चुनौती स्वीकार करना है। यह संघर्ष अति कठिन, रोमांचक एवं लोमहर्षक होगा। इसके कई चरण होंगे। इनमें से पहले चरण में सब महर्षियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

असुरों ने अपने तप एवं अपनी विद्याओं से धरती की कक्षा के ऊपर, परत-दर-परत अँधेरे की स्थापना की है। महर्षियों को अपने तप एवं अमोघ विद्याओं से इस अँधेरे को तोड़ना होगा। यह कार्य कठिन है और इसे सामूहिक रूप से किया जाना है।

समूची धरती पर असुरों ने स्थान-स्थान पर अपने व्यूह बनाए हैं। उनके बनाए हुए इस व्यूह को तोड़ने के लिए महर्षियों को व्यूहबद्ध होना चाहिए। अँधेरे के संस्थापक अभिमानी असुर प्रतिकार में कड़े प्रहार करेंगे। अपने तप की शक्तियों एवं अमोघ विद्याओं के समर्थ प्रयोग करेंगे।

उनके प्रहार के प्रतिकार के लिए हमें समर्थ सामर्थ्य चाहिए। ऐसा करते हुए अपने मन में अहंकार न आने पाए, विवेक क्षीण न होने पाए और भक्ति कम न होने पाए; क्योंकि तनिक भी ऐसा हुआ तो हम असुरों की पंक्ति में जा खड़े होंगे। अँधेरे को तोड़ने के लिए, प्रकाश के अवतरण के लिए हमें, सामान्य जन को भी सजग, सचेष्ट व समर्थ रहना होगा।

वे अपनी जीवनशैली, जीवन की रीति-नीति को ऐसा बनाएँ कि उनका जीवन ईश्वर की ओर उन्मुख हो। कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष में असुरों व असुरता के सहयोगी व सहभागी न बनें। इस कार्य में जितनी व्यापकता व सघनता होगी, धरती की कक्षा से अँधेरा उतना ही शीघ्र हटेगा।

अपने द्वारा, अपने सहपाठियों के द्वारा यह कार्य हम सबको ही करना है। हमारे द्वारा किए गए ये दोनों कार्य, उस कार्य को प्रबल वेग एवं प्रबल सामर्थ्य प्रदान करेंगे, जिसे प्रभु संपन्न करेंगे। यह योजना का अंतिम चरण होगा। इसमें क्रम से चरणबद्ध रीति से असुरों, असुरता, उनकी रीति-नीति पर प्रत्यक्ष आक्रमण होगा। भगवान महाकाल अपने सहयोगियों के साथ, भगवती शक्ति के सान्निध्य में यह स्वयं संपन्न करेंगे।

इसका आरंभ इसी भूमि से होना है। समय इसका साक्षी बनेगा। महाकाल इसका सूत्र-संचालन करेंगे। इसमें सबका सहयोग होगा। इसी के साथ यहाँ पर पुरुष एवं प्रकृति अपनी लीला रचाएँगे। इसे देखकर अज्ञानी मोहित होंगे और ज्ञानी अपने ज्ञान के नवीन आयामों को उद्घाटित करेंगे। यह होना ही है। न तो शिव संकल्प मिथ्या हो सकता है और न ही भगवती शक्ति का आह्वान व्यर्थ जाएगा। कारणजगत् में लीला रची जा चुकी है। बस, उसे कार्यजगत् में प्रत्यक्ष होना है।

सूक्ष्मजगत् में रची जा रही विधि-व्यवस्था को स्थूल घटनाक्रमों में परिवर्तित होने की देर भर है। वर्तमान के क्षण से जिन घटनाक्रमों को आगे बढ़ना है, उनकी समस्त पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी है। अब तो बस, हमको भविष्य का नवआरंभ करना है। भगवान महाकाल ने युग-परिवर्तन व युग प्रत्यावर्तन का जो संकल्प लिया है, हम सभी उसी योजना की कड़ियाँ हैं। सूत्रधार तो महेश्वर स्वयं हैं।

हम सभी तो उनके द्वारा रचाई गई, इस योजना में अपनी-अपनी भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। युग निर्माण योजना उन्हीं की है, युग-परिवर्तन का कार्य उन्हीं का है। बस, हम सभी को, उनकी इस

दिव्य लीला में अपनी तय भूमिका का निर्वहन करना है। युग निर्माण योजना तो अवश्यंभावी है। यह तो होकर ही रहेगा।

महाकाल की इस योजना के बारे में महायोगी एवं दिव्य द्रष्टा श्री अरविंद ने सन् 1910 में भविष्यवाणी की थी कि 2024 तक धरती में असुरों के द्वारा फैलाया गया अँधेरे का यह व्यूह समाप्त हो जाएगा और 2024 से धरती में प्रकाश अवतरण की प्रक्रिया का शुभारंभ होगा। अत: इस भागवत योजना में हमें भी अपनी भागीदारी सुनिश्चित करना चाहिए। ❑

अभय कुमार को जंगल में एक नवजात शिशु पड़ा हुआ मिला। वह शिशु को घर ले आया और उसका नाम जीवक रखा। अभय कुमार ने उसे यथायोग्य शिक्षा प्रदान की। जब जीवक बड़ा हुआ तो उसे पता चला कि अभय कुमार उसके असली पिता नहीं हैं और उसे संभवतया लोकाचार के भय से जंगल में छोड़ दिया गया था। यह जानकर कि वह कुलहीन है, जीवक का हृदय ग्लानि से भर उठा। उसने अपना विषाद अभय कुमार के सम्मुख रखा। अभय कुमार ने उसे यह भूलकर तक्षशिला जाने को तथा श्रेष्ठतम विद्या अर्जित करने को प्रेरित किया। जीवक के तक्षशिला पहुँचने पर उससे प्रवेश के समय कुल, गोत्र संबंधित प्रश्न पूछे गए तो उसने स्पष्ट रूप से सत्य बता दिया। प्रवेश लेने वाले आचार्य ने जीवक की स्पष्टवादिता से प्रसन्न होकर उसे प्रवेश दे दिया।

जीवक ने कठोर परिश्रम द्वारा तक्षशिला विश्वविद्यालय से आयुर्वेदाचार्य की उपाधि हासिल की। उसके आचार्य ने उसे मगध जाकर लोगों की सेवा करने का निर्देश दिया। जीवक ने उत्तर दिया—"आचार्य! मगध राज्य की राजधानी है। सभी कुलीन लोग वहाँ निवास करते हैं। क्या वे मुझ जैसे कुलहीन से अपनी चिकित्सा करवाना स्वीकार करेंगे? मुझे आशंका है कि कहीं मुझे अपमान का सामना न करना पड़े।" जीवक के गुरु ने उत्तर दिया—"वत्स! आज से तुम्हारी योग्यता, क्षमता, प्रतिभा और ज्ञान ही तुम्हारे कुल और गोत्र हैं। तुम जहाँ भी जाओगे, अपने इन्हीं गुणों के कारण सम्मान के भागीदार बनोगे। कर्म से मनुष्य की पहचान होती है, कुल और गोत्र से नहीं। सेवा ही तुम्हारा धर्म है।" जीवक की आत्महीनता दूर हो गई और अपने सेवाभाव से वह प्रसिद्ध चिकित्सक बना।

सब कुछ बदल रहा है

संवेदना का दिल में, नवदीप जल रहा है।
अभियान चल रहा है, सब कुछ बदल रहा है॥

जग में अनास्था का वटवृक्ष बढ़ गया है,
दुष्कर्म रंग सिर पर बेखौफ चढ़ गया है,
कब कौन कंस-रावण बन करके लूट जाएँ,
हम राम के पुजारी संस्कृति बचाने आएँ,
अब जग में संक्रमण का, वह दौर चल रहा है।
अभियान चल रहा है, सब कुछ बदल रहा है॥

विकृत विचार मन की हर पर्त में समाये,
जग में अशांति विग्रह के दिख रहे हैं साये,
हर ओर वासना में डूबा हुआ जमाना,
आओ चलें मिटाने व्यसनों का हर ठिकाना,
सुविचार से मनुज का, भवबंध कट रहा है।
अभियान चल रहा है, सब कुछ बदल रहा है॥

संताप की ये दुनिया दुर्भाव से ग्रसित है,
निज स्वार्थ में फँसा मन होता सदा भ्रमित है,
कल्मष कषाय संशय भ्रम भ्रांति में पगे हैं,
गुरुवर के शिष्य सच्चे सन्मार्ग में डटे हैं,
सद्भाव का मनों में अरमान पल रहा है।
अभियान चल रहा है, सब कुछ बदल रहा है॥

मद मोह मान माया हैं रंग कितने काले,
तप-त्याग संयमों के सब शब्द हैं निराले,
दुनिया नई बनाने का भाव मन में पाले,
करुणा दया कृपा का संकल्प गुरु सँभाले,
सद्गुरु कृपा से चंचल, यह मन सँभल रहा है।
अभियान चल रहा है, सब कुछ बदल रहा है॥

—*शोभाराम शशांक*

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

अश्वमेध महायज्ञ की सत्रहवीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य पर प्रतिकुलपति देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा गायत्री चेतना केंद्र का लोकार्पण

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-10-2023
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

देव संस्कृति व्याख्यानमाला के अंतर्गत ' वसुधैव कुटुम्बकम् ' विषय पर विद्यार्थियों एवं गायत्री परिजनों के समक्ष अपने विचार व्यक्त करते हुए श्री जगत प्रकाश नड्डा जी (अध्यक्ष भा.ज.पा.) एवं श्री मोहन मधुकरराव भागवत जी (सरसंघचालक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ)

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष — 0565-2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel

Click here to subscribe Rishi Chintan Youtube Channel

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel के वीडियो युग निर्माण मिशन के लिए समर्पित है! हमारा एकमात्र उद्देश्य परम पूज्य गुरुदेव के विचारों को जन-जन तक पहुंचाने का है।

आप इन वीडियो को डाउनलोड करके मिशन की गरिमा के अनुरूप प्रयोग कर सकते हैं।

आप भी हमारे साथ जुड़ कर इस विचार क्रांति योजना में सहभागी अवश्य बनें।

धन्यवाद

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel को Subscribe करने के लिए क्लिक कीजिये और Bell 🔔 बटन को जरूर दबाएं ताकि आप को नोटिफिकेशन मिलते रहे।

All World Gayatri Pariwar Official Social Media Platform

Shantikunj WhatsApp:- शांतिकुंज की गतिविधियों से जुड़ने के लिए **8439014110** पर अपना नाम लिख कर **WhatsApp** करें

Official Facebook Page:-

https://www.facebook.com/awgpofficial

https://www.facebook.com/ShantikunjRishiChintan

https://www.facebook.com/awgplive

Official Twitter:-

https://twitter.com/awgpofficial

https://twitter.com/DrChinmayP

Official Instagram:-

https://www.instagram.com/awgpofficial

https://www.instagram.com/shantikunjrishichintan